

श्रावक का अहिंसा व्रत.

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलाल जी महाराज
के
व्याख्यानों के आधार पर

सम्पादक—मुन्नालाल शास्त्री

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचट जी महाराज की
सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मंडल
रतलाम (मालवा)

प्रथमावृत्ति
१०००

धाराबन्ध २४५४
विक्रमाब्द १९८५

{ मूल्य १ }



ज्ञान पञ्च विध प्रोक्त श्रुतज्ञान विशेषत

प्राणी मनु क टु र्सा का अन्त कर अभय मुख देनेवाला एउ धम ही है । किन्तु धमाधम टु यादृत्त्य की पहचान आप्त पुरुषों क वाक्य (उपदेश) द्वारा ही सुगमता पूर्वक हो सक्ता ह इसी कारण से शास्त्रकारों ने किसी अपेक्षा सब ज्ञाना से श्रुत ज्ञान को हा विशेष महत्व दिया है ।

श्रुतज्ञान ही जगत का कल्याण कारक है । श्रुत ज्ञान अर्थात् आप्त पुरुषा क वाक्य, यही सिद्धान्त, आगम सूत्र, प्रवचन आदि अनङ्ग नामों से प्रख्यात है । इही के द्वारा मनु क ल म अनन्त जीवों ने आत्म कल्याण किया, वनमान काल में अनेक जीव आत्म कल्याण कर रहे हैं, ऐसे ही अनागत काल में अनन्त जीव आत्म कल्याण करेंगे ।

महत्पुरुषा क वचना का प्रभाव नीतिकारों ने तो यहाँ तक गया है कि -

श्रुत्या धर्म विजानाति, श्रुत्या त्यजति दुर्मनिम् ।

श्रुत्या ज्ञानमचाप्नोति श्रुत्या मोक्षमवाप्नुयात् ॥

श्रवण करने से ही धम जाना जाता है, श्रवण करने से ही तृबुद्धि हटती है, श्रवण करने पर ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती ह, इसा तरह श्रवण करने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है, चिन्मये संकष्ट उदाहरण शास्त्रों में विद्यमान हैं ।

महत्पुरुषा क एक एक वाक्य महान् ऋद्धि सिद्धि का दाता होता है । क्योंकि वे जगत के कल्याण की भावनाओं को मुख्य रस कर ही (अनेक प्रकार के कष्टा व परिमहों को सहन करत हुए एक प्रात से दूसरे प्रान्त म विचर कर) उपदेशा फरमोने रहते हैं । किन्तु आयावत का ही बहुत सा विभाग एसा है जहाँ देशकान्तानु सार चारित्रकी कठिनाइयों को निभाते हुए नहीं विचार सकते हैं । उन प्रान्तों में बसनेवाले सज्जना को व भावी प्रजा को भी उन महापुरुषा के वाक्य रूप साहित्य

का लाभ मिल सके, इस हेतु में कई एक महानुभावों की इच्छा जगत विख्यात महाप्रतापी उग्र चारित्र्य क्रिया के आराधक वैराग्यपुत्र श्रीमद् जैनाचार्य महाराज जाधिराज श्री श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के व्याख्यानों का समग्र करके एक अच्छा साहित्य तैयार कराने की थी किन्तु धावका में इस प्रकार का सगुटा चल न होने से यह कार्य किसी न अपने हाथ में न लिया, अतः हम लोग उस प्रभावशाली सारगर्भित साहित्य से वंचित हो रह गये। तथापि उन्हीं के गद्दोपर वतमान जैनाचार्य महाराज श्री श्री १०८ श्री जवाहिरलाल जी महाराज साहब की व्याख्यान शैली भी विद्वत्तायुक्त प्रतिभाशाली असरकार जैसे ही रोचक भी है। इतना ही नहीं, वतमान युग की आवश्यकतानुसार समाज की सम्पूर्ण दशक एवं जैन सिद्धांतों को पुष्टिकारक है। इसी तरह श्रोताओं के हृदय में अपूर्व भाव पैदा करती है। सन्नेप म इन महात्मा के वाक्य भी जैन साहित्य की खामी को पूरा करने वाले हैं।

इस मंडल की स्थापना होने के बाद कितने ही सभासदों की मायना प्रकट होते २ मंडल की चतुर्थ बैठक (रतलाम) के समय प्रस्ताव में रखी गई, जिसकी विद्यमान सभासदों ने उत्साह सहित अनुमोदन करके प्रस्ताव पास कर दिया। इतना ही नहीं उसको कार्य में परिणित करना व इसके लिये खर्च लगाना भी स्वीकार किया। तदनुसार धीमान् के व्याख्यानो का समग्र स १९८३ के व्याखर चतुर्मास म व स १९८४ के भीमासर के चतुर्मास म यो दोनों वष में कराया गया और वे व्याख्यान ज्या के त्यों छपवा कर प्रकाशित करने के लिये बहुत से सज्जनों ने इच्छा दर्शाई थी। इसी तरह व्याखर म मंडल की बैठक ने प्रस्ताव भी किया था तदनुसार आफिस भा रमना व्याख्यान छपवा कर प्रसिद्ध करने की तैयारी कर रहा था किन्तु गत वष भीमासर म मंडल की छठी बैठक हुई थी उस में व्याख्यानो के खपय म सह ठहरान हुआ कि व्याख्यान समग्र कराया जाता है वह भविष्य म भी कराया जावे और पहले जा समग्र हुआ है व हो रहा है उनका ससो भन कराया जावे। तैयार होन पर आफिस तरफ म प्रसिद्ध किये जायें श्यादि।

तदनुसार दानों वषा के व्याख्यानो का ससोधन कार्य शुरू कराया। जिय पर से यह प्रतीत हुआ कि व्याख्यान जैसे के तैके छपवाने में ग्रन्थ बहुत बड़ जनि कोई ३ विषय के मजमून में पुनरोक्ति हो जनि, प्रत्येक विषयो का प्रति पादन जुदेर विभागों म बट जान से साहित्य की परिपूर्णता म कमी रह जान इसी तरह प्रत्येक विभाग भी खड २ वष जनि से वाचक का जा धानद व असर हाना चाहिये नही सकता। एसी ही राय खान २ विद्वान् व प्रतिष्ठित मज्जना की मिली थी उन

पर मे सब व्याख्याना म स छटणी कराके जिन २ विषयों की पुष्ठा म जो २ प्रमण हेतु, उदाहरण प्रथम् २ आवे हैं, उनका एक स्थान पर संगठन करा रना अत्यान-
 दयन जान कर, प० सुभालाल जी वैद्य सोजत वाला के द्वारा जो साहित्य तैयार
 कराया है, उसम से यह एक पुष्प आपने समझ रगेत ह। यद्यपि ऐसा करने म
 मडल ऑफिस को धन व समय का निशेष व्यय करना पडा किन्तु पाठकों के
 लाभार्थ प्रत्येक विषय पर एक २ निबन्ध बनवा कर प्रकाशित किया जन का हा
 निश्चय किया है। उसम मे यह 'श्रावक का आहिमा जन नामक पुस्तक आपके
 कर कमलों में पहुंचाते हैं। आशा है कि वाचक इस साहित्य को अपना कर हर र
 उत्साह को बढावगे और पूण कोशीश द्वारा अपने २ यहाँ ग्राहक बना कर उक्त
 साहित्य के प्रचार म अपना भी हक समझ लाभ के भागी बनेगे।

यहाँ यह भी बता देना समयोचित होगा कि व्याख्याना का संग्रह कर, न ४ व
 उक्त साहित्य तैयार कराने में मडल को बहुत खच हुआ है। वह सत्र अलाहदा
 रख कर भीनासर फ्रीटी के ठहराव अनुसार केवल कामज व छपाइ अर्नि खच के
 लागत के आधार पर ही पुस्तक का किमत रनरी है। इसका स्पष्ट उदाहरण
 पुस्तक की रोचकता, भव्यता और विशालता से खय आपका अनुभव हो जावेगा।

विज्ञप्ति

उक्त साहित्य म जो २ भूल नजर आन कृपया सूचित कर ताकि आगामी
 आवृत्ति म उचित सुधार किया जावे।

स्पष्टीकरण

साधु महात्माओं की भाषा परिमित होती है, इसीलिये वे नव मोच समझ कर
 शास्त्र को दृष्टा म रख कर ही उपदेश परमाते हैं। पर ग्राहक, अनुयायक,
 मशोधक व सम्पादन महाशयों से भव उलट हो गये हा अथवा साधु की भाषा से
 विपरीत वचन लिगे गय हा तो यह जुम्मेवारी पूज्य श्री के ऊपर नहीं है किन्तु
 यह दोष कार्यरताओं का समझ। जो २ विषय शास्त्र की र्णा से विरुद्ध मालूम
 है उसका गुलासा पूज्य श्री मे अथवा आश्रम के साथ लगना पडा करन से
 हो सरेगा।

इतलम

भवदीय—

बालचंद्र श्री श्रीमाल
 सेनेदरी

चरदमाण प्रीतलिया
 प्रसिद्धेष्ट

श्री श्वे० साधुमार्गी जैन पूज्य श्री रुपमीचन्द्रजी महाराज की
 सम्प्रदाय के हितेच्छु श्रावक मडल ऑफिस, रतलाम (मालवा)

विषय सूची.



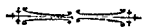
विषय

पृष्ठांक-

१	जावन का उपयोग	१
२	सत्र जान सुण चाहते हैं	२३
३	हिंसा किसे कहते हैं	७
४	हिंसा के कारण	३८
५	हिंसा क भद्र और पल्ल व्रत का सूत्र पाठ से विस्तार	३२
६	पड्डले (अहिंसा) व्रत के अतिचार	४१
७	अतिचारों की विशेष व्याख्या	४६
८	हिंसा के कर्म और उनसे बचने का उपय	५१
९	सांसारिक कार्य और अहिंसा	८६



श्रावक का अहिंसा व्रत ।



जीवन का उपयोग ।



स बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि मनुष्य जन्म बड़े पुण्य से मिलता है । जो मनुष्य इस अमूल्य देह को पाकर भी व्यर्थ की मौज-शोक में इसका अतक कर देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं कहला सकता । बुद्धिमान् इस देह को पाकर क्षण क्षण में अपनी श्रेष्ठ साधना का मंत्र जपता रहता है पर मूर्ख यही समझता है कि मैंने मनुष्य जन्म पाया है, फिर ऐसा देह नहीं मिलेगा, इसलिए जो कुछ मौज-शोक करल वही मेरी है ।

मित्रों ! यह हम मनुष्य का अज्ञान है कि वह इस प्रकार का विचार लाता है । वह नहीं समझता कि मैं जिसको मौज-शोक समझ रहा हूँ वही मेरे दुःख का कारण होगा । समय भी कहां से ? समझ ज्ञान के बिना नहीं आ सकती । 'अममज्ञ' ही अज्ञान है और अज्ञान ही का दूसरा नाम आध्यात्मिक जन्मद्वार है । अज्ञान के बराबर मनुष्य के लिये कोई अधिकार दुनियां में नहीं है । ससार में जितने बुरे काम होते हैं, उन सब का कारण अज्ञानता और मन का तिमिर है । अज्ञानता को दूर करना अधिकार में से प्रकाश में आना है ।

गिरां ! आप लोग बिजली से परिचित हैं । आप जानते हैं कि बिजली पावर हाउस में पैदा होती है । और जिन जिन जगहों पर इस क तार के साथ ग्लोब लगे गते हैं, बत्तों के बटन दवाने से उन जगहों पर अधिकार मिश्रण प्रकाश फैल जाता है । ठीक इसी तरह जो लोग आध्यात्मिक अधिकार को मिटाया चाहते हैं, उन्हें सद्गुरु रूपी पावर हाउस से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये । या रखिये धीरे सम्बन्ध जोड़ने से कुछ नहीं होगा । पावर हाउस पावर देता है, घर में उस के तार के साथ ग्लोबर्मा लगा है, पर जबतक बटन नहीं दबाया जाता, प्रकाश नहीं होता । अपने आध्यात्मिक अधिकार को र करने के लिये भी मनुष्य को भक्ति रपी बटन दबा लेना चाहिये । गुरु में जितनी ताकत होगी उतना प्रकाश देगा ।

गुरु का चुनाव पहले करना चाहिये । गुरु परीक्षा कर देख लेना चाहिये कि जिसको मैं अपना गुरु बनाना हू वह वास्तव में गुरु बनने योग्य है या नहीं ।

आज गुरु बनने के लिये बहुत से बेपधारी मनुष्य मुह-वि रहते हैं, पर परीक्षकों को मालूम होता है कि अधिकांश उनमें 'गुरु' तो क्या पर साथी बनने योग्य भी नहीं होते ।

भारतवर्ष माबुक देश है । यहां के निवासियों में जितना धर्म प्रेम है, उतना अय देश वासियों में नहीं । धर्म प्रेम ही के कारण 'साधु' नामधारी पर इतना भक्ति पूर्वक विश्वास करने हैं कि तन मन धन से सेवा करने तैयार रहते हैं । क्या भारतवर्ष को छोड़कर किसी देश में ५६ लाख साधु ~ ?

' नहीं । '

क्या आपने कभी यह हिसाब लगाया है कि इन साधुओं का प्रति दिन कितना खर्च भारतवर्ष को उठाना पड़ता है ? लोग स्वयं भूखों

रहते हैं, नगे रहते हैं पर साधुओंके लिये भग पेट अन्न और वस्त्र का प्रबन्ध करते हैं । साधुओं को कई बार ऐसे ऐसे माल खानेको भिजने हैं कि कई अभागों ने जैसे भोजन के दर्शनभी नहीं किये होंगे । यदि इस हिसाब से इनका खर्च गिना जाय तब तो कई लाख रुपयें होत हैं पर आप इस हिसाब से नहा, साधारण से साधारण सुराक प्रति मनुष्य चार आने के हिसाब से भी जोड़ेंगे तब भी प्रतिदिन १४ लाख, प्रति मास ४ करोड २० लाख, और प्रति वर्ष ५० करोड ४० लाख रुपयें का खर्च होता है !!

लोगोंने इतना बड़ा खर्च अपने सिर क्यों उठा रक्खा है ? इस लिये कि हमारे में रहा हुआ जो अधकार है वह दूर हो जाय । उद्देश्य कितना पवित्र और कितना उच्च है ! पर क्या आज यह उद्देश्य सफ़ल होता है ? क्या इस भावुकता में यही उच्चता रही हुई है ?

‘ नहीं । ’

‘ क्यों ? ’

‘ इस लिये कि सबे गुरु नहीं । ’

कई गुरु कहलानेवाले ऐसे हैं कि जिनका गाजा और भग के बिना कुछ काम नहीं चलता, चढस के बिना जिनकी आखें चढ़ी रहती हैं, और दम लगाये बिना तो मानों उन का दम ही निकला जा रहा है ।

मित्रों ! आप ऐसोंको अपना गुरु न चुनिये । और ऐसों को भी न चुनिये, जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई बार असाधुगानों से चिड़चिड़ेपन, खेद, मूर्खता या किसी प्रकार के दुर्व्यसन का आखेट बन जाते हैं । परंतु ऐसे को चुनिये, जो अपने मह्य को साहस, रोष शुन्यता, दृढ़ता, शांति और असीम धैर्य के द्वारा सिद्धाता है ।

यदि आपको ऐसे गुरु न मिले तो गुरु बिना रह जाओ पर अनधिकारी को गुरु मन बनाओ । जो अनधिकारी को गुरु बना लेता है, उसे दिम्बनेवाली इन टोटामी भूल के बदले महा पश्चात्ताप तथा अनन्त जन्म मरणका दुःख भोगना पडना है ।

भाइयो ! जैन साधुको शास्त्रकी भाषामें 'श्रमण' कहा है । और उसके उपासक को 'श्रमणोपासक'

कोई प्रश्न कर सकता है कि उपासकको 'श्रमणोपासक' क्यों कहा ? 'अरिह तोपासक' क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि 'श्रमणोपासक' कहने से अरिहत्ताका भी समावेश हो जाता है पर केवल 'अरिह तोपासक' कहनेसे श्रमणा का उपासक नहीं हो सकता । इसमें एक और भी बात है वह यह कि तार्थकर समय विशेषमें अवतार लेते हैं अतएव उनके जमानेमें जो होते हैं वे ही लाभ उठा सकते हैं । पर श्रमण तो जब तक प्रभु का शासन चलता है तब तक रहते हैं इस लिये उनको श्रमणों के दर्शन होते रहते हैं । पर अरिह तों के नहीं ।

श्रमणोपासक को शास्त्र में 'द्विज मा' और 'श्रायक' भा कहा है । क्यों कि सूत्रमें, व्रतवारा श्रायक होते हैं उसके लिये पाठ कहा गया है कि—'श्रमणोपासण जाया' अर्थात् श्रायक का जन्म हुआ । श्रमणोपासक का अर्थ आप समझ गये होंगे और श्रायक का अर्थ शास्त्र सुननेवाला वह भा आप समझें होंगे । पर 'द्विज मा' शब्द का अर्थ आपके समझने योग्य है ।

कोषों में और अन्य शास्त्रों में 'द्विजम्मा' शब्द के कई अर्थ मिलते हैं । जैसे ब्राह्मण, पक्षी, साधु, श्रायक आदि । ब्राह्मण का नाम द्विज मा तब पडता है जब कि उसका उपनयन (यनोपवित) सम्कार हो जाता है । यनोपवित (जनेई) लेने के बाद, वह ससार का भाया जान स दूर गैर तत्र विचार आदि में गीन हो जाता था

अर्थात् अपने पूर्व जन्म से बहुत भिन्नता कर लेना था, इसी लिये उसे (ब्राह्मणों) 'द्विजमा' याने दूसरा जन्म धारण करनेवाला कहा है।

पक्षी को 'द्विजमा' क्यों कहा ? इसका मतलब यह है कि पक्षी शुरूमें एक अंडे के रूपमें होता है। न उसके हाथ पैर होते हैं और न उसके पंख आदि सिर्फ तरल पदार्थ के रूपमें अंडे में रहता है। कालांतर में वह अंडा फटकर उसमें से पंख आदि धारण किया हुआ पक्षी निकलता है। वह पक्षी पहले किस रूपमें था और बाद में किस रूपमें आगया अर्थात् उसने अपने जीवन काउ में कैसा महान् अंतर कर दिया, इसी लिये उसे भी 'द्विजमा' कहा है।

साधु के लिये यही बात समझनी चाहिये। साधु पहले गृहस्थ था। अब उसने साधु व्रत ले लिया, अपने जीवन में महान् अंतर कर दिया इसलिये साधुको भी द्विजन्मा कहा है। यानी 'अणगार जाए' साधुका जन्म हुआ।

आपको द्विज मा क्यों कहा गया अब यह बात शायद आप समझ गये होंगे। आपकी भी अपने जीवन में महान् अंतर कर देना है इसलिये यह भी द्विजमा कहलाता है।

फर्क भाई सोचते होंगे कि हमने आपकी के घर में जन्म लिया है इसलिये हम 'आश्रक' ही हैं। या ब्राह्मण के घर जन्म लिया है इसलिये हम 'ब्राह्मण' ही हैं। अब हम भी 'द्विजमा' अधिकारी हैं। पर ऐसा नहीं है। यह खयाल करना भी

'कारण ?'

कारण यही कि जैसे मयूर, हंस, बगुला को हम मयूर, हंस, बगुला नहीं कह सकते। वे यह हम मानते हैं, पर ये वे पक्षी हैं, ऐसा

न्तर में जब ये फूटकर पक्षारूप धारण कर लेंगे तब यथा नाम कहे जा सकेंगे और तभी ये 'द्विजमा' कहलाने के अधिकारी समझे जायेंगे।

इसी प्रकार श्रावक या ब्राह्मणके घर जन्म ले लिया, यह तो हुआ उन पक्षियोंकी तरह अंडे के रूप आना, पर जब श्रावक-मुत्त श्रावक व्रत धारण कर लेता है और ब्राह्मण पुत्र का उपनयन संस्कार होता है तभी वे क्रमशः श्रावक या ब्राह्मण कहलाने हैं और तभी द्विजमा कहलाने के लिये अधिकारी माने जाते हैं।

जो श्रावक-त-से अज्ञात है, भिया डोलता है, दुराचरणोंका सेवन करता है वह 'द्विजमा' कहा है। इस प्रकार जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि गणोंसे रहित है, ससारकी माया जाल से दूर नहीं है, वह भी 'द्विजमा' नहीं है।

जैन शास्त्रने 'द्विजमा', 'श्रमणोपासक' या 'श्रावक' बनने में, हरेक मनुष्य के लिये उदारता पूर्वक द्वार खोले हैं। जब आप शास्त्र खोलकर देखेंगे, तो पता लगेगा उच्च से उच्च वर्ण से लेकर गृह तक जैन श्रावक तो क्या पर साधु तक बने हैं।

जो शास्त्र वर्म पालनके लिये इस प्रकारका हरेक मनुष्यको समानाधिकार नहीं देता वह शास्त्र कहलाने योग्य नहीं कहा जा सकता।

बैसे तो ससारमें 'शास्त्र' नामकी बहुतसी पुस्तकें हैं। वैद्यक शास्त्र 'शास्त्र' कहलाता है, कोटाका कानूनकी पुस्तक याना 'धारा शास्त्र' भी 'शास्त्र' कहलाता है पर भिन्न जो 'शास्त्र' शब्द का नाम लिया है, वह इनसे मिलकुल भिन्न है। य शास्त्र शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले शरीर का ही भला चाहनेवाले हैं इसलिये ये लौकिक शास्त्र हैं, पर जिसके द्वारा शारीरिक ममाने उन्ने आत्माके अन्वेषण में सहायता मिले, आत्मा से परमात्मा बननेका जिनमें ज्ञान प्राप्त हो और इन्हीं

बातोंके साथ इन्हों सम्बन्ध में जगतके साहित्य का विचार आये, उसे शास्त्रकार 'शास्त्र' कहते हैं।

शास्त्रों के अगाध विचारोंका हम वर्णन नहीं कर सकते। हमारी जिह्वा थक जाती है। वैदिक ग्रंथोंमें इमी भावको व्यक्त करनेके लिये 'नेति नेति' शब्द मिलता है।

प्रिय मित्रों ! जिस शास्त्र का मैंने उल्लेख किया है क्या वह शास्त्र क्या वह उदार शास्त्र किसी व्यक्ति विशेष के साथ पक्षपात करेगा ? क्या वह कभी कहेगा कि धर्म पाठनेका अधिकार अमुक अमुक व्यक्ति को है ? क्या वह कहेगा कि धर्म पाठनेका अधिकारी अमुक ही हो सकता है और अमुकोंके लिये अनधिकार चेष्टा है ?

'नहा, कभी नहीं।'

पैर में सोना हरेक नहीं पहन सकता। जिसके ऊपर राजाकी महारानी होती है वही पहनता है। इसका मतलब यह हुआ कि सोना महारानी की चीज है। इसका उपयोग हरेक नहीं कर सकता। धर्म महारानीकी चीज नहीं। जो धर्म किसी का पक्षपात नहीं करता वही धर्म 'धर्म' है और वही राष्ट्रीय व विश्वधर्म कहलाने योग्य है।

कई भाई सोचने हैं कि धर्मकी व्याख्या अमुक व्यक्ति विशेष व साधु ही कर सके हैं, हरेक नहीं, यह विचार गिना जडका है। धर्मका इतना सकुचित अर्थ नहीं है। धर्म व ऐसी मात्रा नहीं है कि उसका उपयोग थोड़े व्यक्ति ही कर सके और जगत मात्र उससे वचिन रहे। अगर धर्ममें इतनी सकुचित मात्रा ही होती तो धर्मके फैलाने वाले अन्तारोंको लोग ईश्वर, परमेश्वर, प्रभु के नाम से क्यों पुकारते ? धर्म आधुनिक व्यक्तियों के लिए नहीं पर सारे समार के लिये है।

जिस प्रकार कुदरतकी चीजोंको उपयोगमें लाने का सबको हक है उसी प्रकार धर्मको पालनेमें सबका हक बराबर है। सूर्य किसी खास व्यक्ति के घर प्रकाश नहीं करता पर सारे जगत को प्रकाश देता है। जल किसी खास व्यक्तिका तृपाको नहीं बुझाता पर पानेवाले सब प्राणिया का बुझाता है। वायु, कुछ प्राणियोंके लिये ही जीवन दाता नहीं बरन सब प्राणियोंके लिये है। अग्नि केवल राजा के ही पकानोंके बनाने में काममें नहीं आती पर सर्व साधारण उसका उपयोग कर अपने अपने उपयोगकी वस्तुए बना सकते हैं।

मित्रों! यदि सूर्यमें उपरोक्त गुण न हो, जलमें ऊपर कही हुई शक्ति न हो, वायुमें बतलाई हुई विशेषता न हो, अग्नि पक्षपात रखती हो तो क्या कोई उहे, सूर्य, जल, वायु, अग्नि आदि के नाम से पुकारेंगे?

‘नहीं।’

इसी प्रकार धर्म सबके काममें आनेकी वस्तु है। जो धर्म कुछ व्यक्तियोंके काममें आवे और कुछके न आवे वह अपूर्ण है।

कुदरत की सब वस्तुओंपर सर्व साधारण का हक है, हरेक की अतिकार है कि वह उन चीजोंको काममें लाने। यदि उा वस्तुओंसे किसी को कुछ हानि पहुचे तो यह दोष उस वस्तुका नहीं है, वस्तु तो गुण वाला हा है। पर उससे जो आगुण हुआ है वह उस उपयोग करनेवालेकी प्रकृति के अनुसार नहीं थी, इसलिये हुआ।

सूर्य सबको रोपना देनेवाला है पर ससारमें कितनेही प्राणियों के लिये यह रोपनी अत्रकार पैदा करनेवाला सी हो जाता है। जैसे—उल्हू जिमगादर आदि को सूर्य के प्रकाश में दिवांड नहीं देता। इनको रात्रिमेंहा दिखता है। इन प्राणियोंको दिखाइ नहीं देता यह दोष सूर्यका नहीं, पर इनकी प्रकृति का है।

कुदरतकी वस्तु सवसो फायदा पट्टाचाना है, चाह उमरका उपयोग राजा करे, नाश करे, चाडाल करे, मायु करे, सवके लिये वह एक रूप है। किसीका भेद भाव नहीं करती। धर्मभा ऐसी ही वस्तु है।

कई भाई धर्मकी एक 'हा आ' समझते हैं। वे समझते हैं कि धर्म एक भयकर छत्रकी चामांग है। जो इसका स्पर्श करता है, उसका सर्व नाश हुए बिना नहीं रहना। मसार में आन जा विश्रुतलता फेटी हुई नजर आता है, वे समझने हैं कि इसके फटनेमें 'धर्म' नामकी वस्तुका जबरदस्त हाथ है। मैंने पत्रोंमें ऐसे लेख देखे हैं, लोग इसी विश्वास के कारण 'ईश्वर' और 'धर्म' नामकी वस्तुका अस्तित्व दुनियामें उठानेके लिये ऊपर कम रहे हैं। वे समझने हैं कि 'ईश्वर' और 'धर्म' चितने जल्दी दुनियाके पर्देस उठ जाय उतनाही जल्दी मानव समाजका भला होगा।

जिन युक्तियों के आधार पर इन भाइयोंने 'ईश्वर' और 'धर्म' को अर्थ चक्रकार देने का लिया है, वे युक्तिये इनना पोची और सर हीन है कि सिर्फ धर्म का व्याख्या जाननेवाला बालक भा उनका खडन सहल से कर सकता है।

मित्रों! धर्म यदि दूत की निभारी की तरह होता, उसका फट दुनिया में हुए फैटाने वाला, सुव्यवस्था में हस्तक्षेप करनेवाला मादूम होता तो तार्थिकर अमतार और महापुरण इसकी जड मजबूत करने के लिये क्या इतना उद्योग करते ?

जिन भाइयोंने शास्त्रों का कुछ भी मनन किया है, वे जानते हैं कि धर्म परलोक में सुख देने वाला ही नहीं पर इहलोक में भी कल्याणकारी है। *

धर्म का जसा सुन्दर व्याख्या जैन शास्त्र बतला रहा है, वैसा ही कणाद व्याख्या म भा बतलाया है।*

जिस 'धर्म' शब्द का इतना सुन्दर व्याख्या है मला क्या वह त्यागमे योग्य माना जा सकता है ?

जिन दिनों मानव समाज में धर्म का आदर था, उन दिनों यह आनन्द से अठखेलियाँ करती थी। पर जब से उसके प्रति उदासीन रहना आरम्भ किया तभीसे घोर हाहाकार और चारों तरफ से कष्टपूर्ण चिन्कार मुनाई देता है।

धर्म पालन के दो मार्ग हैं। एक गार्हस्थ्यरूपसे और दूसरा अणु-गार रूप से। गृहस्थावस्था में रहकर जो धर्म पालन करता है, वह 'श्रावक' कहलाता है और घरबार त्याग कर जो धर्म आराधना करता है वह कहलाता है—'साधु'।

मित्रों ! साधु के आचार विचार क्या होते हैं, फिर कभी मोका हुआ तो बतलाऊंगा। अभी आप लोगोंको श्रावक के कर्तव्य क्या होते हैं, बतलाना चाहता हूँ।

यह बात तो मैंने पहले ही प्रगट कर दी थी कि श्रावक हरेक जातिका बन सकता है। इसके लिये शास्त्र यह नहीं कहता कि अमुक जातिगला ही हो।

श्रावक के दो भेद होते हैं। एक 'समकिन्ती-श्रावक' और दूसरा 'व्रती-श्रावक'।

समकिन्ती-श्रावक उसे कहते हैं, जो दम 'अरिहन्त', गुण 'निमग्न', और धर्म 'अरिहन्त भाषित', पर धारणा रखता है।

* यतोऽम्युदय निक्षेपस निदि स धर्मः ।

ब्रती—श्रावक वह कहलाता है, जो ऊपर कही हुई बातों के मानने के साथ साथ श्रावक के लिये जो जो त्त बनलाये गये हैं, उनका यथा शक्ति पाठन करनेवाला हो ।

मित्रों ! भारत त्तवारी श्रावक की अपेक्षा आज सामान्य व अपूर्ण त्तधारा श्रावक ज्यादा देखने में आते हैं । आप लोग में ज्यादा तर किंचित त्तवारी श्रावक ही हैं । इसका कारण हमें तो यही मान्य होना है कि आप लोग १२ त्तवारी श्रावक बनने में कठिनता का अनुभव करते हैं । आप समझते हैं कि त्तरी श्रावक बनना त्तत मुदिकल है । १२ त्तवारी त्तरी श्रावक बनने पर समार का हम कुछ भी काम नहीं कर सकते । १२ त्तवारी-श्रावक बनने पर हमको दुनिया के सब कामों से अलग रहना पड़ेगा । हमें हमारी सुख-समृद्धि से वंचित रहना पड़ेगा । और हमें उनसे भी दूर रहना पड़ेगा, जिन वधुओं को और स्त्री पुत्रा को हम बहुत ही प्यार करते हैं ।

मित्रों ! त्तरी श्रावक बनने में आप जिन जिन कठिनाइयों का अनुमान करते हैं, निश्चास रखिये वे कठिनायें इसमें नहीं हैं ।

इस बात को तो आप गूब जानते होंगे कि 'आनंद' 'कामदेव' आदि त्ते बडे ऋद्धिशाली पुरत त्तरी श्रावक थे और चेटक उदापण आदि बडे बडे राजा भी ।

आप अपनी ऋद्धि और वृद्धिके साथ सुतसे इनके ऋद्धि वृद्धि सुखके साथ तुलना कीजिये । जब इतने बडे २ पुरतभी त्तरी श्रावक हो सकते हैं त्त भला सोचिये तो सही आप क्यों नहीं हो सकते !

बगालमें चैतन्य प्रभु नामके एक प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं । उन्होंने बहुत से ऐसे देवी भक्तों को जो पशु बलिदान के पक्षपाती थे अहिंसक बनाया उनके उपदेशका जमर बगाल पर इतना पडा कि त्तदा

के बरत स मनुष्य उनके मन के अनुयायी बन गय । इनके शिष्योंमें कई करोड़पति भी थे । अनन्य प्रभु गरीबों आर अमीरोंमें कोई भेद नहीं रखते थे । इनके गरीब शिष्य जिस प्रकार भिक्षा मांगने जाया करते उसी प्रकार ये धनवान् करोड़पति शिष्यों को भी यही काम सौंपते थे । इनके शिष्य वेचत गोटाका हा भिक्षा नहीं मांगत पर 'मित्रों परमेश्वरका नामलो' यह भिक्षा भा मांगते थे । जिस समय लोग करोड़पतियों के बच्चों को सासु वेगमें देखते उनका हृदय प्रेमस उमड पटता आर शक्ति से विशेष मस्तु द्वाग भी इतना आदरम कार कर अपना अहोभाग्य मानते थ । जब इनको कोई र्त्रा पुरय भिक्षा देने तयार होते तब कहत कि मुने इस भिक्षाका चरम नहीं ह अतरात्मा जिससे तस हा, ऐसा ईश्वर के स्मरण रूपा भिक्षा दाचिये ।

चतन्य प्रभु एक बार दक्षिणमें गय । एक दिन उहान गीता पाठ करनेवाल एक पंडितके पास बैठे हुए एक खोता का लावों से अरिख अश्रुधारा बहाते टखा । वह था किसान । चतन्य प्रभु न उमस पूछा,—

भक्त ! त क्या समझा ?

किमान — महाराज, भगतान् वृष्णने अर्जुनको जा बाणी सुनाई, मेर ऐसे भाग्य कहा कि उमे सुनता । आज मे उस बाणा को सुनकर धन्य धन्य हुआ ह । इमी जाग द से मेग हृदय उठल रहा है, बाणी मे बुठ नहीं समझा । गातापाटी पंडित के हृदयम प्रेमा प्रम न था ।

प्यारे मित्रों ! इसा तरह आप लोग भा तीर्थकरोंकी बाणि को अनन्य प्रेमसे शरण करेग तो आपके हृदय मे उस किसान का भांति प्रति हागे । ताथंकरों और गणपरी का गणान्तो सुन कर भा आपके हृदय प्रमस न उममें तब कर उममेंग । याद रखिये जिस मनुष्यका हृदय कोमल होगा वही उपदेश ग्रहण कर सकेगा । हृदय कमर विकसित किये बिना आनंद का ?

आप लगेगोने आनद कामदेव आदि श्रावकों के कई बार चरित्र सुनें होंगे, यदि हृदय कोमल कर सुनते तो असर अवश्य हाता। आपके हृदय से यह उमग अवश्य फूट निकलती कि जब ऐसे ऐसे सासारिक कार्य करनगाले भा व्रती-श्रावक हो सकते हैं तत्र हम क्यों न बने ?

पानी भं रहनेगाला कमल सूर्यकी किरणों को स्पर्श करते ही खिल उठता है पर पानी से बाहर रहनेगाला सूख जाता है।

मित्रों ! क्या आप जानते हैं कि बड़े बड़े श्रावक गृहस्थों और राजा महाराजाओं के चरित्रों की नोंध शास्त्र में क्यों ली गई ? इसीलिये कि इन चरित्रों से दूसरे लोग शिक्षा लें और अपने जीवन को नियमित बनायें।

विद्वानों का कहना है कि ' अनियमित जीवन सच्चा जीवन नहीं है। ' अतएव समझदारों का कर्तव्य है कि अपने जीवन में एक भी ऐसा कार्य न होने दें जो अनियमित ढंग से किया जा सके। अनियमित कार्यों का कोई ढांचा तो बनाया जाता हा नहीं, केवल अटकल पचू होते हैं। जो मनुष्य मकान बनगाले समय अटकलपचू का सहारा लेता है, ऐसा सुदृढ नहीं होता जेसा विचारपूर्वक बनाते।

क्यों ? इसलिये कि आप जानते हैं कि अगर मकान का नकशा ठीक तौर से न बनाया जायगा तो मकान सुदृढ और अच्छे ढंग से न होगा।

मित्रों ! इसी प्रकार आप याद रखिये कि नकशा या ढांचा बनाने का नियम सिर्फ मकान के लिये ही लागू नहा। पढता पर हरेक काम में लागू पढता है। लेखक के पुस्तक रचने में, चित्रकारके चित्र बनाने में, वक्ता के व्याख्यान देने में, सुधारकके सुधार करने में, आविष्कारक के गन्वेषण में, सेनापति के सप्राप्त कराने में, इन सभी कार्यों में, कार्य

आरम्भ के पूर्व जिस प्रकार कार्य करना हो उसका तकाशा, मस्तिष्क में साधना के साथ रच लेना पड़ता है। जैसा पूर्व कल्पित नक़्शे की एकता, सुदृढ़ता और पूर्णता होगा वैसे ही अन्त में उस कार्य का सिद्धि होगी।

आप लोग अपने जीवनको नियमित बनायें नियमित बनानेसे आपका जीवन परिपूर्णता को पहुँचने लगेगा। और आपको अपने जीवन का प्रत्येक क्षण शांतिमय और हरेक कार्य सुख पूर्ण प्रतात होगा।

यदि आप में यह सोचने की तारुद नहा कि हम किस प्रकार अपने जीवनका ढाँचा बनायें तो आप शास्त्र में उर्णित बड़े बड़े श्रावकों के आदर्श चरित्रोंको सामने रखिये। सामने रखकर उन चरित्रोंके भावको समक्षिये। चरित्रोंका भाव शरीरमें रहे जीवके समान है। जिस शरीरमें जीव नहीं वह शरीर किसा कामका नहीं। जीव बिना के शरीर को कोई प्यार नहीं करता, वह सबसो भयकर-सा दिखाई देता है। जीव बिना के शरीरको लोग गाड़ देते हैं, जल्य डेते हैं, पाना में फेंक देते हैं, घरमें उपयोगी वस्तुके तराक कोई उसका सचय नहीं करता। इसा प्रकार कथा के भावको न समझनेसे कोई फल नहीं होता यह चैतन्य बिना के शरीरके समान है। वस्तुकी कौमत् उसमें रहे हुए सारभूत गुणसे है। सारहान वस्तुको कोई नहीं पूछता वह निकम्मी है।

यदि आप चरित्र के भावको समझकर उसे अपने जीवन में उतार लेंगे तो निश्चय समक्षिये कि आप भी उस चरित्रनायक के समान बन जायग। यहा उसके समान बनने का कुजी है।

कई बार यत्ना लोग कथा के बहिरा वर्णनको बटे बडे अलकारों से सजाते हैं पर सार भूत वर्णनको बहुत सूक्ष्मरूप-अस्पश्य देते हैं, इस लिए श्रोता लोग उस कथा के सारको समझ हा नहीं सकते। कई

जगह ऐसा भा होता है कि श्रोता ही अर्थका अनर्थ कर देता है ! उक्ता कहता क्या है और आप सज्जते क्या है ।

एक पण्डितजी रामायण की कथा बच रहे थे । उन्होंने कहा— 'सीताका हरण हो गया' पर एक श्रोता ने समझा 'साताका हरणिया हो गया याने सीता मृगा (हरिणी) बन गई ।

कथा रोज बचती था । यह श्रोता हमेशा उत्सुक रहता कि देखें सीता, हरिणी से वास्तविक सीता कब बनती है । बहुत दिना बाद कथा समाप्त होनेके अनसर तरु भी, हरिणी बनी हुई सीता का वास्तविक सीता होनाका बात न सुनी तब उस श्रोतासे न रहा गया, यह बोल ही तो उठा कि 'पण्डित जी महाराज ! सीता हरिणी तो हो गई पर फिर सीता हुई या नहीं ?'

पण्डितजीने अपने मिरपर हाथ लगाकर कहा—'फटे नमीत्र तुम्हें और हमारे शामिल हा ! मैंने कहा था क्या आर तुम समझ रख' ।

भाइयों ! जिस प्रकार इस श्रोताने अपनी ही भ्रम से उलझा उलझा अर्थ किया वैसे न होने पाये ।

कई भाई आजकल निकलते हुए शास्त्रों को गुरु-गुरु जाप बाच जाते हैं । यह जगह है, पर इससेभी अच्छा यह है कि अपने से विशेष विद्वान् मातु के पामही से सुनें । इन विद्वान् वचनों के द्वारा आपको समझायेंगे अपना अनर कुछ न होवे । अपने आप पढ़नेका कुछ जार हा । भोले भाईको पढ़ने के लिए निकले हुए शब्द साधारण भये ही जँचें पर उनमें शक्ति होती है । हाथी दात तो आपने देखा ही है—। यह दात होता है तब उसके द्वारा वह नगर के दरवाजे के बंद कर डालता है । पर जब वही दात गेरादीके यहा

पहनता है उसमें वह शक्ति नहीं जाती। भले ही वह चूड़ा बड़ोंके थगारको बढ़ादे पर यह कियाड तोडने की शक्ति, जो हाथों के पास रहने पर थी, वह उसमें कभी नहा आनकती इमी प्रकार धर्म-गुरु के मुखारविंद से निकले हुए वचनों में जो शक्ति होता है वह उस दातगले हाथों के पराक्रम के सदृश होती है और जो साधारण मनुष्यों के मुह से वचन निकलते हैं या खुद उभे हुए प्रधादि पढते हैं वे उभे उस बहिन के चूडे के समान भले हा शोभा देने वाले हों पर उसकी वरासी वे कभी नहीं कर सकते।

मैंने ऊपर साधु के वचन की जो विशेषता बतलाई है वह नाम धारी साधु के वचन से तान्त्रिक नहीं रखती। नामधारी साधु के वचन में वह शक्ति न मिलेगी यह उसी साधु के अदर उतनेही विशेष प्रमाण में मिलगी जो जितना ध्याना मौना और योगाभ्यासी अर्थात् भावित आत्मान तथा रूप का मुनि हागा।

ध्याना मौना और योगाभ्यासा साधु के साथ यदि इतना समय न हो कि वह आपको शास्त्र सुन सके और कबल कुछ सस्मगका हा लाभ आपको मिले तो भी आपको निराश न होना चाहिये। सचे साधुके सस्मगसे सभगी के पापोंका अन्त-अन्तर होजाता है, ऐसे कई उदाहरण मिलते है। प्रमत्त चोर जोर चिग्यती सचे साधुओं के सभागसे पवित्र बनगये। इसप्रकार वाल्मिकी नामका एक बडा भाग हत्यारा डाकू था। यह कोटी था। साधुओं पर भी इसको दया न आता थी। मगर सस्मगसे यह वस्मिकी अपनेमें मत्त बन गया। जिसकी अनई हुई राम यण को लोग बडा भक्तिपूर्वक पठते हैं और अपने जापन का आदेश बनाते है।

१२ व्रतधारी धावक बननेका उद्योग हमने ऊपर किया था। मैंने कहा था कि धावकव्रत इसलिए नहीं बनते कि वे इसमें कठिनाता का करते है।

मित्रों ! जिस प्रकारका जीवन अभी आप बिताते हैं, उसमेंकी उच्छ्रब्धता, व्रत धारण करनेपर आपको जरूर निकाल देनी होगी पर उस उच्छ्रब्धता के निकालने से आपकी हानि न होगी, लाभ होगा । लाभ आपको ही नहीं पर ससारको भी होगा ।

आज क अधिकांश लोगों में उच्छ्रब्धता बढ़ रही है । उनकी यह उच्छ्रब्धता उनके हरेक काम में नजर आती है । उच्छ्रब्धता के कारण से ही आज सारे ससार में वर्णसंकर कार्य फैल रहे हैं । वर्णसंकर कार्य से मेरा मतलब यह है कि जिस वर्णवालेको जो कार्य करना चाहिये उसे न कर भिन्न वर्णवाले के कार्य को स्वीकार करना । वर्णसंकर कार्य दुनिया के लिए हानिकर है । ससारमें आज इतनी खैचातानी करने पर भी लोग सुखपूर्वक अपना पेट नहीं भर सकते । इसके खास कारणोंमें से यह भी एक है ।

श्रीकृष्ण ने गीताके अदर—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः, पर धर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधन श्रेयः, पर धर्मो भयावहः॥

‘यदि अपने धर्ममें कुछ कठिनाईयें हों और दूसरे के धर्ममें सरलता दिखलाई देती हों तो भी अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये—लिखा है

‘अपने धर्मके लिए प्राण दे देने चाहिये’ क्या इसका मतलब यह है कि एक शराबी शराप पीना अपना धर्म समझता है शराब के बिना उसका कुछ भी काम नहीं चलता इससे उसे मर जाना चाहिये ? क्या एक आदमी पर स्रा के साथ मौज मजा उढानेमें ही धर्म मानता है उसके बिना उसे चेन नहीं पडती, कोई इन दुष्कर्मसे छुडाने की कौशाश करे तो क्या उसे उसके विरुद्ध लडकर मर जाना चाहिये ? राजा प्रदेशी जिसके हाथ सदा खून-से सने रहते थे, मनुष्योंकी हिंसा करना ही उसने

अपना धर्म मान लिया था क्या उसे अपना वह धर्म मुनिके उपदेश से न त्यागना चाहिये ?

तब इस श्लोकका क्या अर्थ हुआ ?

मित्रों ! यदि अपने धर्म को ही चाहे वह बुरा ही क्यों न हो, उसे ही धर्म मान लिया जाय तबतो उमे उमके लिए मर जाना ही चाहिये । पर ऐसा धर्म नहीं है। जो ऐसा धर्म मानता है वह बड़ी भारी गलती करता है ।

हमने जहा तक इस श्लोक पर विचार किया है तथा अन्य विद्वानों के इस पर के विचार सुन हैं उससे यहा विश्वास होता है कि यहाँ 'धर्म' शब्दका सम्बन्ध वर्णाश्रम धर्म के साथ है, न कि किसी और धर्म के रूपमें ।

वर्णाश्रम धर्म के साथ यदि ऐसा कडा उपदेश न दिया जाता तो ससार की व्यवस्था ठाक तरह से नहीं रहती ।

भारतवर्षकी सामाजिक नीति वर्णाश्रम पर कायम की गई थी । जब तक लोग अपने अपने वर्ण के अनुसार ठाक २ तरह से कार्य करते थे तब तक शांति थी पर जब इसकी रिपती डँवाडील हो गई तभी से सारे सुखोंका जड हिल गइ ।

पहले का वर्णाश्रम आजकल से बिल्कुल भिन्नता रखता था । आजकल का वर्णाश्रम केवल नाम मात्र का वर्णाश्रम है । आज का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का पुत्र, अपने पूर्वज इसी वर्ण में गिने जाते थे इसलिय अपना भी उसी नाम मे परिचय देता है तथा लोक भी ऐसा ही समझने लग गये ह । पर पहले अमुक वर्णकी सतति होने उसे उमी वर्ण का, माना जाय, यह बात नहीं था, उसके कर्तव्य के अनुसार उसे निशच 'वर्ण' के अतर्गत करके पुकारते

ये। इस व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण शूद्र तक हो सकता था और शूद्र ब्राह्मण तक।* उत्तरायन के २५वें अध्याय में 'वर्णाश्रम' के लिये ऐसा कथन है—

कम्मुणा वम्मणो होइ, कम्मुणा होइ सत्तिओ ।

वइस्सा कम्मुणो होइ, सुद्धो हणइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥

अर्थात् कर्म के अनुसार ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र होता है।

ब्राह्मण को ब्राह्मण कर्म, क्षत्रिय को क्षत्रिय कर्म, वैश्य को वैश्य कर्म और शूद्र को शूद्र कर्म करने की व्यवस्था योग्यतानुसार ग्रंथों में बतलाई है। इसका मतलब यह नहीं है कि जैसे ब्राह्मण का कर्म विद्याध्ययन करना है और क्षत्रिय का वीरता रखना, पर ब्राह्मण में वीरता न होनी चाहिये और क्षत्रिय में विद्या का अभाव होना चाहिये। वैश्य का काम व्यापार करना है और शूद्र का सेवा, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वैश्यकी स्त्री को कोई दुष्ट उड़ा ले जाता है तो भा वैश्य को वीरता कर के न मचाना या हम शूद्र बन जायेंगे इसलिये किसानकी सेवा न करें।

मित्रों! याद रखिये हरेक मनुष्य में चारों गुणों की जरूरत है। प्रती उठाया जाता है कि तब वर्णाश्रम क्यों? इसका उत्तर यह है कि हरेक मनुष्य हरेक कार्य में पूर्ण प्रमाण नहीं होता, इसलिये जिसमें जिस गुणकी विशेषता हो उसेही उस कार्य के योग्य समझने चाहिये।

हमने उच्छ्रूलता शब्द का ऊपर प्रयोग किया था। वर्णसंस्कार कार्य उसी उच्छ्रूलता का फल है। और भा अनेक प्रकार की उच्छ्रूलताएँ मनुष्यों में बढ़ रही हैं। १२ व्रत धारण करने पर हानिकर

* शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणमेति शूद्रताम् ।

ये उच्छ्र्वलताएँ दूर करनी होंगी । उच्छ्र्वलता अभिमान की पुत्री है ।
 १२ व्रतधारी को व्यर्थ का अभिमान दूर करना होगा और जब अभि-
 मान दूर हो जायगा तो फिर उच्छ्र्वलता भी अपने आप नष्ट हो
 जायगी ।

उच्छ्र्वलता उस अभिमान की पुत्री नहीं है, जिसे विद्वान् लोग
 स्वाभिमान या धर्मयुक्त्वाभिमान के नाम से पुकारते हैं । स्वाभिमानी
 में उच्छ्र्वलता नहीं होती । उच्छ्र्वलता उसमें होती है जो मिथ्याभिमान
 का शिकार बना हुआ है । मिथ्याभिमान और स्वाभिमानमें उतना ही
 अन्तर है जितना आकाश और पाताल में, या दक्षिण ध्रुव और उत्तर
 ध्रुवमें ।

जहाँ मिथ्याभिमान धर्मको ठोकर मारता है वहाँ स्वाभिमान धर्म
 के लिये बलिदान होजाता है । जहाँ मिथ्याभिमान कर्तव्यसे पराङ्मुख
 होता है वहाँ स्वाभिमान उसे हृदयके सिंहासन पर निराजमान करता है
 जहाँ मिथ्याभिमान विज्ञानके लिये चरण चूमता फिरता है वहाँ स्वा-
 भिमान अपने नेत्र के थोड़ेसे इशारेसे उसे अपना गुलाम बना देता है
 मिथ्याभिमान जहाँ थर थर कापता है, स्वाभिमान वहीं पैर जमाकर
 उसपर विजय प्राप्त करता है ।

मिथ्याभिमान जीवनका अप्रकृत्य और स्वाभिमान उत्कर्ष करने
 वाञ्छा है ।

मिथ्याभिमान को कारण लोग अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने
 की उमंग रखते हैं । देखते हैं कि इसी क वशीभूत होकर कई लोग
 हरेक कार्यमें शक्तिसे अधिक अपव्यय करते हैं । वे समझते हैं कि इस
 हृष्यसे लोगोंपर हमारा छाप पड़ेगा और हम प्रतिष्ठा के पात्र माने
 । । उनका यह हृष्य भोगे लोगोंकी आँखों के सामने कुछ दिनोंके

लिये चका चौंध पैदा कर सकता है पर अधिक दिनोंतक नहीं। समय आनेपर नग्नसत्य दिखलाई देता है आर लोगोंकी नजरोंसे वे इतने गिर जाते हैं कि जिसका अनुमानभी नहा किया गया था।

मित्रो ! मिथ्याभिमान में उदडता रहता है इसीलिये मिथ्याभिमानी मनुष्य समझता रहता है कि 'हम चौंढे और वाजार सकडा।' इसी मनुष्य का यह विश्वास जब सीमा पार पहुच जाता है तब वह मुहके बल ऐसा गिरता है कि सम्हलना मुश्किल हो जाता है।

मिथ्याभिमानी अपनाही पतन नहीं करता पर भाळ भाळे लोगोंके उच्चेजन का कारण बनकर उनका भी पतन कराने में सहायक होता है।

वे भौले लोग, जो झूठ बोलने में हिचकिचाहट लाते थे, इन्हींके ससर्ग से अब इसको अपने उत्थान का कारण मानने लगते ह। जिनको विश्वासघातके नामसे चिड थी वे अब इन्हा के कारणसे इसी के अनय भक्त बन जाते हैं।

मित्रो ! स्याभिमान में यह बात नहीं होती। मिथ्याभिमान में जहाँ उदडता थी वहाँ इसमें नम्रता होती है।

नम्रतामें अजब आकर्षण शक्ति होती है। यह हरेकको अपनी तरफ खेंच लेती है। और लोगोंके पाससे यह वह काम कर दिखलाती है जिसके लिये दूसरे कई प्रयत्न करनेपर भी सफलता नहीं मिलता था।

शास्त्रमें जितने उच्च श्रावक हुए हैं यदि उनकी उन्नतिका कारण आप गहरे में पैठकर देखेंगे तो पता लगेगा कि इनकी उन्नतिका मुख्य कारण नम्रता था।

प्यारे भाईयो ! आप लोगोंका यह विश्वास कि 'प्रती श्रावक धनने में कठिनता है' इसका मैंने कुछ निराकरण किया। इसपरसे आप समझ गये होंगे कि प्रतीके पालने में कठिनता वैसी नहीं है

जैसी हम आप समझ रहे ह । विशेष विश्वास आपको तब हो जायगा जब कि आप ऋमश १२ व्रतोंका खुलासा सुन लेंगे ।

एक बात आपको शायद और खटकती होगी और व्रतोंका खुलासा करनेपर भी शायद खटके । यह यह कि जब व्रत इतने सुगम है इनके पालने में कोई कठिनता नहीं दिखती तब लोग इनको क्यों नहीं पालते ?

मित्रों ! आप जिसको अच्छा समझ गये आपके हृदयने जिसका अनुमोदन कर दिया, उसके प्रति ऐसी शका उठाना ही व्यर्थ है ।

मित्रों ! जिस कार्यकी अनुमोदना हृदय कर लेता है, उसे कार्यमें शाघ्र परिणित करना श्रेयस्कर माना गया है । इतनेपर भी आपको उस कार्य की साधनामें कठिनता और कष्ट प्रतीत होते हैं वे उस कार्य में नहीं है किन्तु आपके मनमें हैं । यदि आप उनकी ओर से अपना मनोभाज बदल डालेंगे तो टेढा मार्ग शटपट सीधा दिखाई देगा और कठिनता सुगमतामें परिणित हो जायगी ।



सब जीव सुख चाहते हैं.

मनुष्य प्राणी संसार के तमाम जीवोंसे महाबुद्धिशाही माना गया है। यह प्राणी स्व-पर का जितना ज्ञान कर सकता है उतना और कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह अपने सुख दुःख का ज्ञानी होता है उसी प्रकार उसमें यह भी ताकत है कि यह दूसरे प्राणियों के सुख दुःखों का ज्ञान प्राप्त कर सके।

वैसे तो हरेक मनुष्य को यह ज्ञान किसी अवस्था तक प्राप्त है पर सर्वाश से उन्हीं महापुरुषोंको होता है जो तीर्थंकर तथा सर्वज्ञ कहे जाते हैं। साधारण मनुष्य ज्यादा से ज्यादा अपनी चक्षुइन्द्रिय आदि की स्थूल शक्ति जहाँतक काम कर सकती है वहीं तक किसी वस्तुके बारेमें ज्ञान प्राप्त कर सकता है पर तीर्थंकर या सर्वज्ञ कहे जानेवाले महापुरुषों में वह शक्ति होती है कि दृष्ट अदृष्ट तमाम वस्तुओंकी अर्थात् जीव अजीवकी अन्त तक की असलियतका ज्ञान रखते हैं।

यह तो आप जानही गये होंगे कि जीव अजीव कहनेसे संसार की तमाम वस्तुओंका ग्रहण हो जाता है। तीर्थंकर प्रभु व सर्वज्ञोंने हमें ज्ञान कराया है कि 'समस्त जीव सुखके अभिलाषा है, कोई भी दुःखको पसंद नहीं करता।'

संसारके जीवोंकी इतनी प्रकारका जातियें हैं कि हम उनकी गिनती नहीं कर सकते। अतएव प्रभुने हमें इन तमाम जीवोंके मोटे पाच भाग कर सबका बोध करा दिया है। वे पाच भाग ये हैं —

‘एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चैरोन्द्रिय और पचेन्द्रिय।’

अर्थात् एक इन्द्रियवाले जीव, दो इन्द्रियवाले जीव, तीन इन्द्रियवाले जीव, चार इन्द्रियवाले जीव, और पांच इन्द्रियवाले जीव।

पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजसकायिक वायुकायिक, और वनस्पति आदिकी जिसके केन्द्र स्पर्श इन्द्रिय होती उनकी एकेन्द्रिय जीवों में गिनती है।

जिसके स्पर्श और रसेन्द्रिय हो उनकी वेन्द्रिय जीवों में गिनता है। जैसे कृमि आदि।

जिसके स्पर्श, रस, घ्राण इन्द्रिय हो उनकी त्रिन्द्रिय जीवों में गिनती है। जैसे चींटी आदि।

स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु इन्द्रिय हो उनकी चौरिन्द्रिय जीवों में गिनती है। जैसे मक्खी आदि।

मनुष्य योनि, तिर्यंच, देवयोनि जिनके स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र हो उनकी पंचेन्द्रिय जीवों में गिनता है।

जल में जीव है यह बात आज के साइंसने पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया है। हम आँखों से नहीं देख सकते पर वैज्ञानिकोंने यंत्रों के द्वारा जल में, टाँखों हल्लते चलते जीव बतलाये हैं। वैसेही खास यानर यानि के जीवों का पिण्ड है। इससे निश्चय होगया है कि जैन का सिद्धांत सत्य है।

जिस प्रकार कई लोग जल में जीव नहीं मानते वैसेही वनस्पति में भी नहीं मानते। पर विज्ञान के बल से अब यह सदेह मिटता जाता है। वैज्ञानिकोंने इन में जाव होना सिद्ध कर दिया है। बिज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस का नाम आप लोगोंने सुना होगा। ये समार के बहुत बड़ वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं। इन का यूरोप अमेरिका आदि देशों में बड़ा मान किया जाता है। समार के कई धुरधर वैज्ञानिक इन को अपना गुरु माननेमें अपना सौभाग्य समझते हैं। इन्होंने एक बार 'वनस्पति में जीव है' इस का प्रयोग बरईमें बतलाया था। दर्शकों

की फीस ४०) रु थी। लोकमान्य तिलक इस जलसेके प्रेसिडेण्ट थे। लोगोंकी भाँड बहुत ज्यादा थी। ४०) टिकिट के देनेपर भी लोगोंको जगह नहीं मिलती थी। जगदीश बाबू जिस समय अपना प्रयोग दिखाने लगे उस समय सामने की लाइनमें पौधों के गमले रखे। उन गमलोंके भाँगेकी तरफ काचके बड़े घड़े तखेत लगाये। फिर सूक्ष्मदर्शक यंत्रको योग्य स्थान पर सजाकर उपस्थित जन समुदायसे कहा कि आप लोग सामने देखिये, मैं इन पौधोंको खुश करता हूँ। इतना कह कर बोस बाबू पौधोंको हर्षात्पादक शब्दोंमें सम्बोधन कर उनकी तारीफ करने लगे। ज्यों तारीफ करते गये ल्यों ल्यों वे पौधे जैसे किसी आदमीकी स्तुति करने पर वह आदमी खुश होता है उसी प्रकार खुश होकर फूलने लगे। पर जब इन्होंने उनकी निंदा करना शुरू की, खराब शब्द उनके लिये प्रयोग करने लगे तो वे पौधे मुरझाने लगे। लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ उनको निश्चास होगया कि वृक्षोंमें जीव होता है।

बोस बाबू इतना ही करके न रह गये पर उन्होंने वृक्षोंमें स्नायु जाल है, और यह मनुष्यों की तरह स्पष्टित होता है, इसको भी सिद्ध कर बतलाया।

ये एक-दो प्रयोग ४०) रु खर्च करने पर मालूम पड़े पर आप जैन सिद्धान्त के लघुदण्डक नामक एक थोकडेको सखि कर साइन्स का कितना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इन वैज्ञानिकोंने जिस प्रकार वनस्पतिमें जीव सिद्ध किया है इसी प्रकार धातुओं में भी सिद्ध किया है।

इनका साइन्स अभी अपूर्ण है। पर हमारे अरिहत्तोका साइन्स बहुत बड़ा चढ़ा है। यहाँ तक पहुँचनेमें न जाने इनको कितना समय लगेगा इन्होंने अभी एक अशक्ती खोजकी है पर हमारे शास्त्रोंने इनके शरीर

अवगाहना आदि का भी वर्णन कर दिया है। ये शास्त्र आजकल क प्रयोगोंको देखकर नहीं लिखे गये पर हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए हैं।

वनस्पतिमें एक इन्द्रिय माना जाता है। यहा पर कई भारी शका कर सकते है कि जब इनमें एक इन्द्रिय है, कान आदि तो है हा नहीं, फिर निंदा स्तुति का ज्ञान किस प्रकार करते होंगे ?

जैन शास्त्र के 'अचारांग' 'विशेष आवश्यक सूत्र' तथा 'ठाणग सूत्र' की टीका में इसका बहुत अडा खुलासा किया गया है, वहाँ देखना चाहिये ।*

हाल के विज्ञानने वनस्पति, जल आदि में जीवोंकी सत्यता प्रगट की, पर अग्नि वायु आदि में अभीतक नहीं कर सका इससे हमको निराशा न हो जाना चाहिये। कारण हम पहलेही कह चुके हैं कि यह अभी तक अपूर्ण है। सम्भव है यह अपनी इमी प्रकार की कोशिश के बल से किसी दिन इस सत्य तक भी पहुँच जाय।

प्यारे मित्रों ! जब वनस्पति आदि एकेंद्रिय जीव भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं और दुःखको न चाहकर सुखको पमन्द करते हैं तब अन्य प्राणी भी यही चाहते होंगे, क्या आपको अब भी इस बातमें शका रह सकती है ?



* वहाँ एकेंद्रिय जीवों के भी भावरूप पाँचों इन्द्रियों का चतुोपदाम बतल सामा है। उपकरण इन्द्रिय एकरी होने से उन्हें एकेंद्रिय कह है

हिंसा किसे कहते हैं।

झूठा पुर्यों की वाणि, उनका किया हुआ वर्णन, पीछे के लोगों का मार्गदर्शक है। वह बतलाता है, अमुक काम करने से तुम्हारी हानि होगी और अमुक से लाभ।

साधारण पुरुषों से जिनमें महाशक्ति होती है उसे महापुरुष कहते हैं। महापुरुष बातों से नहीं होते पर उस के बनने के लिये बड़ी तपस्या करना पड़ती है। इनके मार्ग में कई कष्ट आ उपस्थित होते हैं पर फिर भी सत्य के मार्ग से नहीं चूकते।

परीक्षा करनेवाला सोने को तपाता है, काटता है, कसौटीपर कसता है, फिर माझूम करता है कि यह सोना है या नहीं। इसी प्रकार महापुरुषों की भी परीक्षा होती है। इन के परीक्षक देवता और इंद्र यद्यपि इनकी परीक्षा लेने आते हैं फिर भी सच्चे महापुरुषों के सामने उनकी ही परीक्षा हो जाती है।

मित्रों ! महापुरुषों के अनुभवको ही शास्त्र कहते हैं। महापुरुषोंने जिस बात को बड़े आत्मभोग से समझी उनके प्रताप से उन वस्तुओं का ज्ञान हम सहज से कर सकते हैं।

जैसे खेती करने वाले सत्र नहीं होते पर उस का लाभ सब को मिलता है, वैसे ही आत्मा का पूरा दमन किया होगा क्रोध, मान, माया, लोभ, कपायों को धरा किया होगा, दया की भावना रगरग में रमाई होगी, परमात्मा में लीन हो गये होंगे, 'शास्त्र' ऐसे ही महापुरुषों के फरमाये हुए हैं। ऐसे शास्त्र अपन पररूप नहीं सकते पर उनका उपयोग कर सकते हैं।

आकाश में गरुड पक्षी के बराबर पतंगियां नहीं उड़ सकता; पर उड़ने की अधिकार समान है। उसी प्रकार उच्च महात्मा लोग शास्त्रों का

मंथन कर जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नहा, उस पतंगियों की माफिक अपने हकको काम में लाना

अपने जैसे अल्पज्ञानी जावोंके लिये, यदि अपने को ऐसा ज्ञानका

भाइयों ! आप लोग

का अनुसरण करेंगे तभी आनन्द मिलेगा ।

किमान खेती कर अनाज पैदा भूख मिटाता है । क्या उसी अनाजसे महात्मा पुरुषोंने ये शास्त्र रचे हैं, क्या अपनेको नहीं पहुँच सकता ?

‘जरूर पहुँच सकता है ।’

जिस ज्ञानने उनको रखिये यदि उमका अपन उपयोग

उन महापुरुषोंको शास्त्र प्रगट यह यह कि ‘जगतका उपकार, करना है पर यह लोभ कैसा ? जैसे वृक्ष फलता

मित्रों ! क्या उन महपुरुषोंकी वाणि नहीं नहीं, जैसे वृक्षके फल हरेकके लिये है, उससे हरेक तिर सकता है ।

आप कह सकते हैं, महाराज । सि चाहिये ? ससारमें जैन, वैष्णव, क्रिश्चियन प्रचलित हैं आर समा यही कहते हैं कि जाओगे । किस सिद्धांत पर चलना चाहि

मयन कर जितना लाभ उठा सकते हैं उतना अपन नहीं, पर फिरभी उस पतंगियों की माफिक अपने हकको काम में लाना चाहिये ।

अपने जैसे अल्पज्ञानी जावोंके लिये, यदि ये शास्त्र न होते तो अपने को ऐसा ज्ञानका लाभ कुठर्मा नहा होता ।

भाइयों ! आप लोग शास्त्र को समझकर उनके बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करेंगे तभी आपको उनकी (महात्माओंका) तरह आनन्द मिलेगा ।

किमान खेती कर अनाज पैदा करता है । उस अनाज से वह अपनी भूख मिटाता है । क्या उसी अनाजसे दूसरोंकी भूख नहीं मिट सकती ? महात्मा पुरुषोंने ये शास्त्र रचे हैं, जब उनको इससे लाभ पहुचा तब क्या अपनेको नहीं पहुँच सकता ?

‘जरूर पहुच सकता है ।’

जिस ज्ञानने उनको आत्मस्वरूप परमात्माके दर्शन कराये विश्वास रखिये यदि उसका अपन उपयोग करेंगे तो अपनेको भी करायेगा ।

उन महापुरुषोंको शास्त्र प्रगट करनेमें एक रहस्य जरूर था । वह यह कि ‘जगतका उपकार करना ।’ इसको भी कोई लोभ कहते हैं पर यह लोभ कैसा ? जैसे वृक्ष फलता है वैसा ।

मित्रों ! क्या उन महापुरुषोंकी याणि अपने अकेलोंने लिये हा है ? नहीं नहा, जैसे वृक्षके फल हरेकके लिये हैं वैसीही शास्त्र हरेकके लिये है, उससे हरेक तिर सकता है ।

आप कह सकते हैं, महाराज ! सिद्धान्त किसका सत्य मानना चाहिये ? सत्सारमें जैन, वैष्णव, क्रिश्चियन, मुसलमान सभी के सिद्धान्त प्रचलित हैं और सभा यही कहत हैं कि हमारे सिद्धान्त को मानो, तिर जाओगे । किस सिद्धान्त पर चलना चाहिये ।

मैं पूछता हूँ कि मुसलमान के बनाये कपडे से आपकी लजा निवारण होगी या हिन्दू के बनाये कपडेसे ?

(उत्तर) ' दोनों के कपडे से । '

ब्राह्मण की प्येती से पैदा हुए अन्न से आप लोगों की भूख मिटेगी और शूद्र के द्वारा की हुई खेतीसे ?

(उत्तर) ' दोनों से मिट सकती है । '

प्यारे मित्रों ! आप लोग मूल सिद्धांत पर ध्यान दिया कीजिये । इससे सारी शक्ताएँ दूर हो जायेंगी । जैन हो या वैष्णव, क्रिश्चियन हो या मुसलमान सब के सिद्धान्तों का साररूप मखन अर्थात् तत्व-ज्ञान लेने से जो सत्य है वह मिल जायगा ।

बड़े बड़े ग्रंथोंमें जो बातें हैं महात्मा पुरुषोंने अपने ज्ञानके लिये थोड़े शब्दोंमें उनको समझादी हैं, जैसे —

दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान ।

तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण ॥

धर्म का मूल क्या है ?

' दया । '

दया किस लिये ? दया क्यों समझनी चाहिये ? क्या जैन शास्त्र कहता है इसलिये ? क्या वेदांत या वैष्णव कहते हैं इसलिये ?

मित्रों ! यह प्रश्न और किसी से न पूछो । अपनी आत्मा से पूछो । दया आपको क्षण क्षणमें नजर आयगा और वह जरूरी है इसीलिये यह धर्मका मूल मानी गई है । इसके लिये शास्त्र के प्रमाण की कोई जरूरत नहीं ।

आपके सामने एक आदमी चमकता हुई नगा तलवार टेपर खड़ा है वह आपको मारना चाहता है। दूसरा मनुष्य आपको रक्षायी चेष्टा करता हुआ उसे इस बात का उपदेश देता है कि प्यारे ! इसको क्यों मार रहा है ? वह जवाब देता है कि ' इसे मारना मेरा धर्म है, मनुष्य का हत्या कर्म से पुण्य होता है, ऐसा मेरा शास्त्र कहता है।

बन्धा ये, इन दोनोंमें से आपको प्यार कौन लगेगा ?

' रक्षा करनेवाला । '

जो मनुष्य तलवार के द्वारा आपके जीवन का अन्त करना चाहता है, वह यद् वृत्त्य करना तो है अपने शास्त्रके अनुसारही, पर आप उस शास्त्रको कैसा मानेंगे ?

' रक्षक टोकलमें डाउन लायक । '

क्यों ?

' इसलिये कि वह अपनी आत्माके विरुद्ध है । '

घस, आत्मा के विरुद्ध जो जो बातें हों, प्यारे मित्रों ! वही अधर्म है ! उनका करना पाप है। इसलिये उन कारणोंकी मनाई की गई है। महाभारत के अन्दर भीष्म पितामहने यही बात कही है—

' आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । '

मित्रों ! दया कैवल्य मनुष्योंमें ही नहीं होता परन्तु इसका स्थूल रूप दूसरे प्राणियोंमें भा देखने में आता है। सिंहनी दूसरोंपर हमला करती है, क्या वह अपने बच्चों पर करती है ?

' नहीं । '

' क्यों

‘ साँप काटने से मनुष्य कई बार प्राण मुक्त हो जाते हैं, क्या सभी साँप काटते हैं ? ’

‘ नहीं । ’

उनमें भी दया का किंचित भाव है नहीं तो सबको काट खाए और सब मर जाय ।

मनुष्य मनुष्य में भी दया है नहीं तो एक दूसरेको मार डाले ।

माता बच्चेको सूखेमें सुलाती है पर स्वयं गीले पर सोती है ।

क्यों ? क्या वह बच्चा जन्मता ही उसे कमा कर देता है ? या और कुछ सहायता करता है ?

‘ नहीं । ’

तब माता ऐसा क्यों करती है ?

इसीलिये कि उसमें दया है ।

मित्रों ! दयाहीन प्राणी हिंसक, क्रूर, पापी कहा जाता है । अतएव दया करना सबका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये । याद रखिये दया का दूसरा नामही अहिंसा है और अदयाका नामही हिंसा है ।

मोटी समझ से ‘ हिंसा ’ वह कहलाती है जिस कृत्य के द्वारा किसी प्राणीके जीवनका अन्त किया जाय ।

प्रश्न उठ सकता है कि आत्मा जब अजर अमर अपिकल है त्रिकालमेंभी मारने से नहीं मरती तब हिंसा कैसी ? जो वस्तु नाश नहीं होती उसका नष्ट होना कैसा ?

मित्रों ! लोगोंके विचार आज सधुचित हो रहे हैं जब इनके विचार विस्तृत हो जायेंगे तब हिंसाके सचे स्वरूप का ज्ञान इनमें फैल जायगा । बर्म के विषय में दुनियांमें जो कुतर्क फैल रही हैं, अर्धमें जो खींचा

तानी की जाती है, वास्तविक ज्ञान के फैलनेपर यह सब अधाधुदी मिट जायगी ।

भाइयों ! आत्मा अविनाश है तभी तो हिंसा लगता है । यदि इसके विपरीत आत्माकी अनात्म बन जानी हो तो हिंसा कैसे लगे ? मरनेवालेकी आत्मा नष्ट होगई और मरनेवालेकी आत्मा का नाश हो गया तब तो हिंसा अहिंसा का सवालही नहीं रहा । आत्मा अजर अमर अविनाशी है, तुम्हारीही तरह दूसरोंकी है । आत्मा के पास आयुष्य कर्म है उसको अकालमें जुदा कर देना, यानी आत्मा से प्राणोंका अलग कर देना उसीका नाम हिंसा है । जैसे घासलेट तैल, जो रातभर छालटेन में जल सकता है उसको दियासलाई बतलाकर एकदम भस्का कर जला डालना, उसे 'अकाल में नष्ट कर दिया' कहा जाता है । इसी प्रकार आत्मा के पास आयुष्य कर्म होते हुए भी छुरी तलवार आदि से दुःख पहुंचाकर अंत कर देना उसे हिंसा कहते है ।

मित्रों ! मोटा दृष्टिसे जो हिंसा कही जाता है उसे आप समझ गये । पर जैन शास्त्र इससे भी गहरी बात बतलाता है कि किसी प्राणि को मन वचन कर्मसे किसी प्रकारका दुःख पहुंचाना हिंसा है । इससे भी गहराईके साथ कहता है कि 'करना' 'कराना' और 'किये हुएको अच्छा मानना' मनसे वचनसे और कर्मसे, वह भी हिंसाही है ।

और समझिये । यदि आप किसीको गाली देकर किसीके मन दुखानेका प्रयत्न करते हैं तो समझिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा कर रहा हूँ । यदि आप किसीका अपमान कर रहे हैं तो भी समझ लीजिये कि मैं एक प्रकारकी हिंसा का भागी बन रहा हूँ । यदि आप किसीकी लड़ाई शगडा करनेकी सलाह देते हैं तो समझिये कि मेरा यह कृत्य एक प्रकारका हिंसा में सामिल है । इतनाही नहीं, मनसे भी किसीका बुरा समझना यह भी हिंसा है ।

। इन तमाम हिंसाओंके करनेवाले प्राणियोंको यथा समय बदला चुकाना पड़ता है ।

शास्त्र में 'तदूलमच्छ' की एक जगह बात आई है । लिखा है कि तदूलमच्छ एक मगर के नाक की अणीपर समुद्र में बैठा था । यह जन्तु अगुलीके कई हजारवें हिस्मेती बराबर होता है । एक दिन मगर मुँह फैलाकर सुख से जलमें बैठा हुआ था । सैकाड़ों मच्छियें उसमें आती, और निकल जाती । तदूलमच्छ ने सोचा कि यदि मैं मगर होता तो इनमें से एक को भी जिंदा न छोड़ता, सबको स्वाहा कर जाता । तदूलमच्छने उस समय क्रिया कराया कुठ नहीं, केवल उसकी इसी पापमयी भावनासे नरक में गया और असह्य वर्षातक दुःख उठाता रहा ।

प्रिय मित्रों ! जिस प्रकार भनमें किसी का बुरा चिंतवना हिंसा में गिना गया है वैसेही प्रगट रूप में किसी की निंदा करना यह भी हिंसा के बराबर है । इसके प्रमाण में महाभारत में भी एक उदाहरण मिलता है ।

जिस समय अर्जुन त्रिगतोसे वीरता पूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन्हें देख कर्ण ने पाण्डव सैन्य पर मयकर रूप से आक्रमण किया । दोनों ओर से अस्त्रशस्त्रों का वर्षा होने लगा । वीरोंकी हूँकार ध्वनि से आसमान गूँज उठा । कर्ण के बाण अनेकों पाण्डव सैनिकों को धराशायी करने लगे । उधर अर्जुनने त्रिगर्त-रान सुशर्मा को मार गिराया । भीमने दुर्योधन के छ भाईयोंके सदाके लिये भूशायी कर दिया । यह देख, कर्ण ने युद्धिष्ठिर पर ऐसा भयानक आक्रमण किया कि उनकी बुरी दशा हो गई । रणक्षेत्रसे भाग चले । उन्हें भागते देख, सेनाकेभी पैर उखड़ गये । भीम, सा पकि और धृष्टद्युम्नने उन्हें बड़े २ उस्ताहवर्धक शस्त्रोंसे उस्ताहित कर रोक रखा । फिर दोनों पक्ष में जमकर लड़ाई होने लगी । कर्ण के बारबार आक्रमण से भीमको बड़ा क्रोध चढ़ आया ।

अभी तक नहीं मारा, यह जानकर उनका हिताहित ज्ञान छूत हो गया। उन्होंने बड़े क्रोध भरे शब्दोंमें अर्जुन और उनके गाड़ीव धनुषको धिक्कार दिया। उनकी कठोर वज्र समान वाणि अर्जुन से न-सही गई, वे खड्ग लेकर अपने परम पूज्य भाईको मारने के लिये तैयार होगये। जिनके नेत्रोंके इशारे मात्र पर ये ससारको न्यूँठावर कर देने के लिये सदा प्रस्तुत रहते थे तथा जिनकी आज्ञाका पाठन करते हुए ससार में जहाँ तक कष्ट और-दुःखका-पराकाष्ठा है, वहाँतक उठा-चुके थे और-उठा रहे थे। समय भी क्या ही विचित्र परिवर्तन-शील रहे है! अबोध मनुष्य के मन का कैसा रग विरगा व्यवहार है !!

अर्जुन को इस प्रकार दुःकृत्य करते देख, कृष्णने झटपट, उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—

“अर्जुन ! तुम यह कैसी मूर्खता कर रहे हो ? क्या तुम्हारी बुद्धि मारी गई है ? जो बुद्धिधर तुम्हें पुत्र के समान प्यार करते हैं, जिनका तुमने आग तक कभी अनादर नहीं किया, उन्हीं को मारने के लिये तैयार हो रहे हो ? जरा सोचो तो सही क्या बुद्धिधरके मारने पर तुम जीवित रहना पसन्द करोगे ? क्या बड़ों की मान प्रतिष्ठा का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा ? माखूम होता है कि तुम पागल हो गये हो।

श्रीकृष्ण की बातें सुन, अर्जुन को सिर से तत्काल क्रोध का भूत उतर गया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये खड़े हो रहे। कुछ देर के बाद हाथ जोड़कर कहने लगे—‘भगवन् ! आपने ठीक कहा। मेरी बुद्धि सचमुच मारी गई थी, परन्तु मैं लाचार था। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो मेरे इस गौर्वाण धनुष की निंदा करेगा, उसे मैं तत्काल मारूँगा। भाई साहबने इसका कुछ भी विचार न कर मेरे धनुषको धिक्कारना आरम्भ कर दिया, इसीलिये मैं भी क्रोध के मारे अथा हो गया। यदि

वे मुझे ठाख गालियाँ दते, तो भी मैं झुट्टू न बोलता। उनकी गाड़ियों सिडकियों और धिकारों को मैं जाशीर्वाद समझता हूँ। अब आपही कहिये, पूज्य भ्राता के ऊपर हाथ उठाकर मैंने जो महभ्रष्ट कृष्ण है उसका प्रायश्चित क्या है? मुझ तो धामघान हा एक मान प्रायश्चित माहम होता है। अब मैं इस अधम शरीर को न रम्बूंगा।”

यह कह कर अर्जुन ने ज्योंही अपनी गर्दन तलवार से उड़ा देनी चाही, त्योंही श्रीकृष्णने खड्ग समेत उनका हाथ पकड़ लिया और खड्ग को छीन कर दूर फेंक दिया।

अर्जुन की इस धर्मशीलता से धर्मराज युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए— उनके मनमें जो थोड़ा बहुत ग्लानि पैदा हुई थी, वह मिट गई। उन्होंने अर्जुन को स्नेह पूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—

‘प्यारे पार्थ ! भाई अर्जुन ! ! मैं वास्तर में दौपी हूँ। तुम्हारा क्रोध अन्याय युक्त नहीं था। मैंने धर्म ही में तुम्हारी तथा तुम्हारे गांडीय धनुष की निंदा की, तुम अपनी प्रतिज्ञा पालन करो। क्षत्रिय प्रतिज्ञा भट्ट कर्मा नहीं होता।’

इतना कह युधिष्ठिर ने अपनी गर्दन आगे कर ली।

अर्जुन असमनस में पड़ गये। एक तरफ धर्म सकल, और दूसरी तरफ गांडीय धनुष की प्रतिज्ञा !

श्रीकृष्ण—अर्जुन ! श्रेष्ठ पुरुष का अपमान करना उनकी मृत्यु के बराबर है इसलिये यद्यपि तुम्हें बड़े भाईका अपमान न करना चाहिये पर इस समय इनका अपमान करो यह इनके मृत्यु बराबर होगा।

श्रीकृष्ण का बात सुनकर अर्जुन उनके चरणों में झुक पड़ा और बोला—वाह सुर रि, आपके बिना ऐसी सलाह तौन देता ! आज मैं

धर्मराज की घात कर देता पर वन्य है आपकी बुद्धिको, सचा रास्ता बतठा दिया, पर बडे भाई का अपमान कैसे करू ?

कृष्ण—नहीं, सिर्फ एक अपमान जनक वचन कह दो !

अर्जुन—(युधिष्ठिरसे) आप बडे भाई होकर मेरे गांडीन धनुष का अपमान किया

कहते कहते अर्जुन की आंखों में अश्रु प्रवाह होने लगा, धनुष फेंक दिया और नत मस्तक होकर क्षमा मांगी ।



हिंसा के कारण ।

मिथ्य मित्रों ! हिंसा किन किन कारणों से होती है इसका विवरण शास्त्र में आया है । यदि उन तमाम कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाय तो बहुत समयकी जरूरत है अतः संक्षेप में बतलाया जाता है ।

संसार में करोड़ों ऐसे प्राणि विद्यमान हैं, जो हमें दृष्टिगन् नहीं होते । उनका पुत्र हमारे शरीर के चारों तरफ चक्कर काटना है पर हम उन्हें देख नहीं सकते । ऐसे प्राणियोंकी हिंसा, अनजान में चक्रे, फिरते, उठते, बैठने, आसलेते, किसी वस्तु को इधर उधर रखते एवं आग जलाने समय हो जाती है ।

चींठी आदि जिन प्राणियों को हम आँखोंसे देख सकते हैं, उनकी भी प्रायः अनजान में इसी प्रकार हिंसा हो जाती है । रहे बड़े प्राणी, उनकी हिंसा मनुष्य क्यों करता है ? इसके उत्तर में शास्त्र कहता है कि कोई मांसके लिये, कोई हड्डियों के लिये, कोई चमड़े के लिये, कोई चर्बा के लिये, कोई दातों के लिये, कोई रक्तके के लिये, कोई घालोंके लिये इसी प्रकार और भिन्न भिन्न स्वार्थों के कारण विचारे पशु-धर्मोंकी हिंसा का जाती है ।

किसी वस्तुको सडा कर उसका कोई पदार्थ तैयार करना यह भी एक हिंसाका कारण है । क्यों कि सडानेपर उस वस्तुमें सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं । जैसे शराब आदि । ऐसी चीजें काम में छानेवाले उन जीवों की हिंसा के कारण बनते हैं तथा उन जीवों के मरने पर दुर्गंध आदि फैलकर जो रोगादि फैलते है यह भी हिंसा का ही साधन माना गया है ।

हिंसाके भेद और

पहले व्रत का सूत्रपाठ से विस्तार ।

सूत्र—सूक्ष्म पाणाइवाय समणोवासओ पच्चखाइ, से पाणा-
इवाए-दुविए पन्नत्ते, त जहा-संकप्पओ अ आरम्मओ अ, तत्थ
समणोवासओ-सकप्पओ । जावज्जावाए पच्चखाइ, नो आरम्म
ओ । ।

टीका—द्विन्द्रियादयः सूक्ष्मत्वं चैतेषां सकललौकिक जीवत्व
मासिद्धे, एतदपेक्षयैकोन्द्रियाः (णा) सूक्ष्माधिगमेना (न) जीवत्व
सिद्धेरिति, सूक्ष्मा एव सूक्ष्मकास्तेषां प्राणा—इन्द्रियादयः तेषा-
मतिपातः सूक्ष्मप्राणातिपात त श्रमणोपासक श्रावक इत्यर्थः
प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो
द्विविध प्रज्ञप्त तीर्थकर गणधरैर्द्विविधः प्ररूपित इत्यर्थ 'तद्यथे'-
त्युदाहरणोपन्यासार्थ, सकल्पजश्चारम्भजश्च, सकल्पज्जात-
सकल्पजः, मनस सकल्पाद् द्वीन्द्रियादिप्राणिन मांसोस्त्रि-
चर्मखवाळदन्ताद्यर्थ व्यापदयन्तो भवति, आरम्भाज्जातः
आरम्भज तत्रारम्भोहृदताखननस्तव (छवन) प्रकारस्तस्मिन्
शख चदणकपिपीळिकाधान्यगृहकारकादि सघट्टन पारितापद्रव
लक्षण इति, तत्र श्रमणोपासक संकल्पतो यावज्जीवयापि प्रत्या-
ख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज' मिति, तस्या-
वश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह—एव सकल्पत किमिति सूक्ष्म
प्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति ? उच्यते एकोन्द्रियादि प्रायो
दुष्परिहारा सन्नवासिनां सकल्पैव सचित्त पृथ्व्यादि परिभोगात् ।

भावार्थ—सकल जावालट्टद पुरुषा द्वारा प्रसिद्ध जो शरीद्रियादि
 जाव उनका 'स्थूल' शब्दसे यथा ग्रहण होता है। उसकी अपेक्षा
 सूक्ष्मशुद्धिसे जानने योग्य एकेन्द्रिय जीवको लौकिकमें जीवपनेसे प्रसिद्ध
 नहीं इसलिये उनको सूक्ष्म कहा है। अतएव लौकिक प्रसिद्ध जो स्थूल
 जीव उनका जो शरीद्रियादिक प्राण उसका नाश करना उसको स्थूल
 प्राणातिपात कहते हैं। उसको भ्रमणोपासक श्रावक त्यागता है अर्थात्
 उस स्थूल हिंसासे निवर्तना है। वह प्राणातिपात तार्थ्यकर गगर्षो
 भगवान्ने दो प्रकारका बतलाया है। वह इस तरह है—एक सकल्पज
 और दूसरा आरम्भज। सकल्पमे पैदा होनेवाले अर्थात् मनके सकल्प द्वारा
 शरीद्रियादिक प्राणियोंको मार, हडा, चर्म, नख, केस, दांत आदिके
 वास्ते मारना उसे सकल्पज कहते हैं। और आरम्भसे पैदा होनेवाले
 अर्थात् हल दतेली आदि से पृथ्वी रोदने जादि आरम्भमें शख चदणक
 (जीव विशेष) चीटी जादि धान्य निष्पत्तिकरण अथवा घर बनाने
 आदिमें सतापना विराधना होता है उसको आरम्भज कहते हैं। इन
 दोनों हिंसाम से भ्रमणोपासक श्रावक सकल्पज हिंसाका यावज्जीवनका भी
 त्याग करता है परतु कोई अल्पकालका भी कर सकता है। हां, आरम्भजा
 हिंसारा त्याग श्रावकको सम्पूर्ण रीतिसे नहीं होता है। क्योंकि इसको
 गृहकार्यमें उस हिंसाका सहाय होनेसे। महा कोई शका करता है कि
 जैसे सकल्प से स्थूल प्राणातिपात का त्याग करता है वैसे ही सूक्ष्म
 प्राणातिपातका भी त्याग क्यों नहीं करता? उत्तर है—गृहवासियोंको एके-
 द्रियोंकी हिंसा प्राय दुष्परिहार है क्यों कि वह सकल्प के द्वारा भी
 पृथ्वी आदिका परिभोग करता है।



पहले (अहिंसा) व्रत के अतिचार.

सूत्र—थूलग पाणार्ई वायवे रमणस्स समणोवासएण इमे पच
अइयारा जाणियव्वा तजहा-बधे वहे छविच्छेदे ए अइमारे भत्त-
पाण बुच्छेए ।

(टीका)—अतिचार रहितमनुपालनीय, तथा चाह-‘थूलगे’त्यादि,
थूलक प्राणातिपात विरमणस्स विरतेरित्यर्थं भ्रमणोपासकेनामी पञ्चाति-
स्वारा ‘जाणियव्वा’ इपरिज्ञया न समाचरितव्या -न समाचरणीया, तद्य-
थेत्युदाहरणोपयासार्थं, तत्र वपन बध -सयमन रज्जुदामनकादिभि-
र्हनन बध ताडन कसादिभि उत्रिः शरीर तस्य छेद पाटन कर पत्रा-
दिभि भरणभार अतीव भरण अतितार प्रभूतस्य पूगफलादे स्क्रध
पृष्ठ्यादिध्वारोपणमित्यर्थं भक्तअशनमोदनादिपान—पेयमुदकादि तस्य च
व्यग्रच्छेद निरोधोऽदानमित्यर्थं एतान् समाचरन्नति प्रयमाणुव्रत तदत्राय
तस्य विधि—

बन्धो दुविधो—दुप्पदाण चतुप्पदाण च, अट्टाए अणट्टाए
य, अणट्टाए न वट्टति बधेत्तु, अट्टाए दुविधो—निरवेक्खे सावेक्खो
य, गिरवेक्खो णेच्चय सघणित ज बधति सावेक्खो ज दाम
गठिणो ज व सक्केति पलीवणगादि सु मुचितु छिंदितु वा तेण
ससरपासएण बन्धे वव्व एव ताव चतुप्पदाण, दुप्पदाणापि
दासो वा दासी वा चोरो वा पुत्तो वा ण पढत्तगादि जति वज्झति
तो सावेक्खाणि बधितव्वाणि रक्खितव्वाणि य जघा अग्गिमया-
दिस्स ण विणस्सति ताणि किर दुप्पदचतुप्पदाणि सावगेण गेण्हि
तव्वाणि जाणि अषट्ठाणि चैव अच्छति, व्हो तथा चैव, बधोणाम
ताळणा अणट्टाए, गिरवेक्खो गिरवेक्खो णिइय ताळ्हेति, सावे-
क्खो पुण पुव्वमेव भीतपग्गिसेणहोतव्व, मा हणण कारिज्जा,

जति करेज्ज ततो मम्म मोक्षेण तावे क्ताए दारेण वा एक दो
 तिणिवारे इत्थपाद कण्णणक्काइ णिहयत्ताए छिदति, सावेरखा
 गढ वा अरुय वा छिदेज्ज वा इहेज्ज वा, अतिभारो ण आरो
 वेतव्वो, पुव्व चेव जा वाहणाए जीविया सा मोतव्वा, ण होउजा
 अण्णा जीविता तावे दुपदो ज सय वाखेखवति उत्तारेति वा भारं
 एवं वहाविज्जति, वडह्हाण जथा सामाविया ओ वि भारतो
 ऊणओ कीरति, हल्ल सगहे सुवि वेळाए सुयति, आसहत्थी सुवि
 ए विही, भत्त पाण वोच्छेदो ण कस्सइ कातव्वो, तिक्क छुदो
 मा मरेज्ज, तरेव, अण्णटाए दोसा पारेहरेउजा, सावेरखो पुणरोग
 णिमिच्च वा वायाए वा भणेज्जा अज्ज नेण देमिच्चि, सतिणिभिच्च
 वा उववास कारावेज्जा, सव्वत्याविज्जतणा जथा थूलग पाणाति
 वातस्स अतिचारो ण मवति तथा पपतितव्व, णिरवेरख वधादि
 सुय लोगो व घातादिया दोसा भाणियव्वा ।*

* वधो द्विविधा-द्विपदानां चतुष्पदानां च अर्थायाऽनयोय च, अनर्थाय
 न वत्तते बधु, अर्थाय द्विविध निरपेक्ष सापेक्षश्च, निरपेक्षो यस्मिंश्चल वत्ताति
 वाद, सापेक्षो यद्दामग्रथिना यच्च शक्नोति प्रदोषनकान्तिषु मोचयितुं छेचुवा
 तन सत्तर-वाशकेन बद्धव्य, एव तावत् चतुष्पदानां, द्विपदानामपि दासो वा
 दासी वा चोरो वा पुत्रो वाऽपट्टदादिर्वदि बध्यत तदा सापेक्षाणि बद्धव्यानि
 रक्षितव्यानि च यथाऽग्निभयादिषु न निश्चयन्ति, तं किञ्च द्विपदचतुष्पदा,
 श्रावकेण ग्रहीत-या येऽश्रद्धा एव विधीत, वधोऽपि तथैव, वधो नाम तादृज
 अनर्थाय निरपेक्षो निर्देय तादृशति सापेक्ष पुन पूर्वमेव भीतपरंदा भवित-य
 मा भत्त कुपात्, यदि कुपात् ततो मम सुखा तदा जतया दवरकेण वा
 एकसो द्विस्त्रिंशान् तादृशति, द्विविच्छेदोऽनर्थाय तथैव निरपेक्षा हस्तपादकथ
 नास्त्रिंशति निश्चयतया छिनत्ति, सापेक्षो गण्ड वा अरुवां छिन्नाद्वा दहेद्वा
 अतिभारो नारोपयितव्य पूर्वमथ वा वाहनेनाऽऽजीविका सा मोक्षव्या, न
 भवेद्-या जीविका तदा द्विपदो य स्वयमुत्क्षिपति उत्तारयति वा भार एव
 वाहते, वक्ष्यदर्शनां यथा स्वाभाविकादपि भाराद्न क्रियत, हल्लशकटेवपि
 वेळायां सुयति अश्वहस्त्यादिव्वप्येव एव विधि, भक्तपात-यच्छेदो न

पहल व्रत अतिचार रहित पालन करना चाहिये ।

स्थूल प्रणातिपात से निवर्तनेवाले व्रतधारी श्रावकको पच अतिचार जानने योग्य है परन्तु आचरण करने योग्य नहीं है ।

पच अतिचार ये हैं—(१) बधन, (२) वध, (३) छविछेद, (४) अतिभार, (५) भक्तपाणि विच्छेद ।

किसी रस्सी आदि से बांधना उसे ' बधन ' कहते हैं ।

चाबुक जादि से मारना उसे वध कहते हैं ।

करोन आदि शस्त्रों से शरीर को काटना उसे ' छविछेद ' कहते हैं ।

सुपारी नारीयल आदि भारको पशुके कंधे, पीठ आदिपर शक्तिसे ज्यादा भरना उसे ' अतिभार ' कहते हैं ।

' भक्त ' याने ओदन आदि खाने की चाज, और पाण याने पानी आदि तृण मिटानेकी वस्तु, उसका विच्छेद कर देना अर्थात् भातपाना न देना, उसे ' भक्तपाणिविच्छेद ' नामक अतिचार कहते हैं ।

अतिचारों का विस्तृत भावार्थ ।

बध दो तरहके हैं । दो पदों (मनुष्यादिकों) का और चौपदों (गौ आदि) का । उसके भी दो भेद—अर्थ से धारणा और अनर्थ से बाधना । अनर्थ से बर्जित करें । अर्थ के दो भेद—निरपेक्ष और सापेक्ष । निरपेक्ष उसे कहते हैं जो अति गाढा बाध लगा दिया जाय । इसे अतिचार

कर्यापि क्वचि य क्षीमचुन्मा म्रियेत, तथैवानधाय दोषान् परिहरेत्, " धन धाय ' इत्येतस्य पदस्य दोषान्-अनर्थाय दोषान् " सापेक्ष पुन रोगमिमिक्त या घाथा या भण्डत्-अथ तुभ्य न ददामीती, शक्तिनिमित्त घोषघास कारयेत्, सद्यत्रापि यत्तना यथा स्थूलप्रणातिपातस्यातिचारो न भयति तथा प्रयति त य, निरपेक्षबधदिषु च लोकोपघातादथो दाया भणितव्या ॥ इति ॥

कहते हैं। सापेक्ष उसे कहते हैं जो डोरा आदिसे गाठ ऐसी देवे जिसको अग्नि आदिके लगनेपर शत्रितासे खोल सके। यदि बाधना ही तो घुलना गाठ से नहा जावे। यह चतुष्पाद की निधि है। द्विपदों में दासदासी चौर पुत्र आदि को सुधारने के लिये बाधे तत्र भी निरपेक्ष न जावे। उसका रक्षा करे। जिससे अग्नि भयादि से उसका नाश न होजाय।

श्रावक के लिये ऐसे दो पदों तथा चतुष्पदों को रखने में विशेष सुविधा होती है जो बिना बाधे ठहर सके।

(२) ' बध ' को ताडनभी कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है अर्थ से और अनर्थ से। निरपेक्षतासे दया रहित जो ताडन किया जाता है उससे अतिचार होता है। और सापेक्षतासे ऐसा रिचार करे कि—ये पशु आदि किसीका घात न कर डाले। यदि किसी का नुकसान करता हुआ दिखाई दे तो मर्मस्थान को बाधा पहुँचे ऐसा ताडन न करे।

(३) ' छबिउद ' भी अनर्थ के लिये तथा निरपेक्ष से हाथ पाँव फान नासिकादि का निर्दयता से छेदने को अनिचार कहते हैं। सापेक्षता से बीमारी की गांठ मसमा आदि को छेदन करने से अपना दाग (डाम) देने में अतिचार नहीं माना गया है।

(४) अतिभार न भरना चाहिये। और पशुओंपर बोझ लादनेकी आजिविका भी न करे। यदि दूसरी आजीविता न हो तब द्विपद (मनुष्यादि) स्वयं जिस भार को उठा सके या रख सके ऐसे से अधिक न भरे। बैल आदि पर स्वाभाविक भार से अधिक न भरे। हल गाडा में भी नियत समय से ज्यादा न जोते। हाथा घोडे आदि की भी यही विधि समझनी चाहिये।

(५) भात पार्णा स किमी प्राणा का वि उद न करे। क्यों कि कई एक तीव्र शुभ्र तथा आदि में मर जाते हैं। इससे अनर्थ दोष

पैदा होते हैं इसलिये इसे त्यागे । सापेक्षता से रोग के निमित्त व्यथना भय दिखाने के लिये मुँह से कहे ' आज तुझे रानि को न दूँगा ' तथा रोगादि की शांति के लिये उपवास कराये इन सब कामों में ऐसी यत्ना रखे जिससे स्पृष्ट प्रणतिपात में अतिचार न लगे ऐसे प्रवृत्त करे । निर्वेक्ष बधादिक में लोकोपवाद के भा बहुत दोष है उसको भी ध्यान में रखे ।*

*विशेष विचार आग के पैजों में देखिये ।

अतिचारोंकी विघेप व्याख्या

पहला 'अ' नामक अनिचार आया है। यह के दो भेद होते

है। एक तो दो पद को बांधना और दूसरा चौपदको बांधना। दास दासी नौरत्न चाकरोंका गिनती दो पदमें है और हाथी घोडा गाय अदिकी चौपदमें। ये दो कारणोंसे बांधे जाते हैं, जैसे-अहाये अनहाये-अर्थ के लिये और अनर्थके लिये। किसीको बिना मतउब बांधना और उसे फट देना, उसका कुदरती वाढको रोक देना, यह एक प्रकारकी दिसा है। श्रावकको चाहिये कि इससे बचे।

अहाये अर्थान् अर्थसे बांधना। इसके दो भेद हैं निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष उसे कहते हैं जो लापरवाही से बाधा जावे, ऐसा बाधा जाने कि यह अपने हाथ पैर भी न हिला सके। ऐसा बांधना श्रावकका धर्म नहीं है। दूसरा बांधना है सापेक्ष, मतउब के लिए करुणायुक्त जो बाधा जाये उसे सापेक्ष कहते हैं। शास्त्र कहता है कि पशु आदिको करुणाभावसे इसप्रकार न बाधे कि उन्हें दुःख हो। मौके वे-मौके जैसे लाप (अग्निकांड) आदिमें जल्दी खोला जा सके।

दोपद--दास दासा यदि उदण्डता करते हों उनको सुधारने के लिये बाधना यह सापेक्ष बाधना है। चोरको चोरी करने की सजा याने चोरी की आदत मिटाने के लिये बाधना यह भी सापेक्ष है। इसीप्रकार पुत्रको पढनेके लिये बाधना यह भी सापेक्ष है।

मैं पहले कई बार कह चुका हूँ कि यह धर्म राजाओं के मुकुट पर रहनेवाला है।

राजा इस धर्मको धारण कर सकता है। जो राजा इस धर्म को करेगा उसका फल होगा कि प्रजा के कल्याण के लिये अभ्यासों

को दण्ड दे, चोरोंको याधे और मौका आ पडे तो जुर्मा को सजा भी दे । गुस्से में आकर नहीं, पर चापसे अभियुक्तकी पूरी जाँच कर यदि पयार्थ में दोषी हो और उसके जीनेसे प्रजाको महान् कष्ट पहुचनेकी, शांति भंग की पूरी सम्भावना हो तो उसे फाँसीकी सजा देना यह भी साक्षेप में गिना जायगा ।

वैसे तो राजा फाँसीकी सजा दे सकता है पर जिन्हें कवल बधन की ही सजा दी गई है उसके भरण पोषणमें कभी दुष्टताका परिचय न देना चाहिये । राजा का कर्तव्य है कि उसकी भूख प्यास तथा अन्य शारीरिक बाधाएँ न रुके इसकी तरफ ध्यान रखता रहे । इतने दिन तो उसकी जिम्मेवारी उसीके उपर थी पर अब उसके जावन की जिम्मेवारी राजा पर है । यदि उसे किसी प्रकारका न्याययुक्त कानूनी कष्ट के सिवाय कष्ट भोगना पडेगा उसका पाप राजाके सिर पर होगा । जो राजा इस बातका ध्यान न रखेगा उसका दोष राजाके ऊपर तो होगा ही पर उसका राज्य भी दोषी हो जायगा ।

मित्रों ! यह बात तो हुई द्रव्य बचनकी । ऐसाही भाव बधन के लिये समझ लेना चाहिये । अर्थात् जातिके बधन रीति रिवाज ठहराव कानून ऐसे न हो कि बिचारे गरीब कुचल कुचल कर रिब-रिबकर मर जावें । यदि आप अपनी समाजमें अयाय युक्त कानूनों का प्रचार न करेंगे और जो अभी प्रचलित कितने ही विपरीत कानून हैं उनको टुकरा देंगे तो आपकी समाजमें रामराज्य-सा आनन्द फैल जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

पहले अतिचारका कुछ विचार हुआ अब दूसरे अतिचार बध (हनन) पर विचार किया जाता है । इसके दो भेद होते हैं । एक 'अनर्थ,' दूसरा 'अर्थ' । रास्ते चलते हुए बिना कसूर किसी मनुष्य

या पशुको डण्डे आदि से चोट पहुँचाना जनरथ में गिना जाता है। अर्थात् 'हनन' के दो भेद हैं। एक सापेक्ष और दूसरा निरपेक्ष। दया रहित होकर अंग उपांग के चोट पहुँच जाने का विचार न कर जो चोट पहुँचाई जाती है उसे निरपेक्ष कहते हैं। और जो सुधार के लिये चोट से अपना व्रत भंग न हो जावे—मानों में अपने ही शरीर पर मार मार रहा हूँ ऐसा लपटा कर जो दब देता है, वह सापेक्ष है।

तीसरा अतिचार है 'उविष्टेदन।' इसके दो भेद—सापेक्ष और निरपेक्ष।

श्रावक लोग चार फाट के कामोंसे डरते या धूँजते नहीं हैं। जो दुखियोंके दुःख को निवारण करने के लिये उनके व्रण अर्थात् अङ्गिका के छेदन कर तथा मवाद रून आदि साफ कर मरहम पट्टियोंकी सेवा करता है, उसके अन्दर अपूर्व करुणा का उदय होता है।

अब चौथा अतिचार 'अतिभार' आया। पहली बात तो यह है कि श्रावक को गाढी आदिसे अपना आजाविका बचानी ही नहीं चाहिये। यदि बचानी ही पड़े तो सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान जरूर रखना चाहिये। बेल तथा घोड़ों आदि के ऊपर इतना बोझ न लाद देना चाहिये कि बिचारों के हाथ टांग टूट जाय या शक्तिसे ज्यादा काममें लेने से अपनी जाँवन लीटा जल्दी समाप्त करनी पड़े।

कई मनुष्य भी अपने पेट के लिये बोझ उठाने का काम करते हैं। आप लोगोंका कर्तव्य है कि दया कर उसे शक्तिसे ज्यादा काम न लें। उसको उतना ही बोझ उठानेका अधिकार है जितना वह अपने हाथ से सुल पूर्वक उठा सके और रख सके।

कोई प्रश्न कर सकता है कि यदि वह आदमी अपनी मर्जी से, शक्तिसे ज्यादा बोझ उठाना चाहे तो ?

इसका उत्तर यह है कि—यदि वह अपने मन से भी उठाना चाहे तो भा.श्रावकको उसे न उठाने देना चाहिये। क्यों कि इस प्रकार बोझा उठाने से उसकी जिंदगी जल्दी खतम हो जाती है, ऐसा पुस्तकों के अंदर पढ़ने में आया है। ऐसा करने से एक दोष और भी है और वह यह कि करुणा का भाव नष्ट हो जाता है।

इन मनुष्य धैल घोड़ों आदि के ऊपर ध्यादा न छादना चाहिये, यह बात तो आप समझ ही गये। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि अ—समय में लडके लडकियोंका विवाह करना यह भी उन पर अनुचित बोझा डालना है। बु-जोडे के साथ रिवाह कर देना यह भी अनुचित बोझा है। प्रजाके हित को सामने न रख कर जो कानून (अन्याय युक्त) उनके द्वारा जबरदस्ती पलाये जाते हैं यह भी एक प्रकार का बोझा है। अतएव इन कामों को श्रावक व्रतधारी मनुष्य (राजा आदि भी) कभी न करे।

जिन पशुओं और मनुष्यों को अपने अंगीन कर रखे हैं उनको समय पर विश्राम देना, शक्ति से अधिक काम न लेना इस तरफ से कभी बे-मान न होना चाहिये।

पाँचवाँ अतिचार ' भक्त पाणी रिच्छेद ' है। इसके भी पूर्ववत् दो भेद है। श्रावक को चाहिये कि अनर्थ से किसी को भूखों न मारे। सापेक्ष भूखों मारने में कोई दोष नहीं गिना गया है। समाज के अन्दर अभी कुछ ऐसी बेहूदी फैली हुई है कि वैय वगैरे आज्ञा देते हैं कि इसको रोटी आदि मत देना तो भी घरवाले ' कुछ तो खा ले ' कह कहकर जबरदस्ती खिलाते हैं।

रोग अग्रस्था में भूखों मारना रोगी को भूखों मारना नहीं है पर रोग को भूखों मारना है। इसी प्रकार रोग अग्रस्था में रोटी देना रोगीको

रोटी देना नहीं है पर रोग को रोटी देना है। वैद्य आदि निश्चय कर कहे कि इस रोग में रोटी जादि देना हानिकार है वैसे अन्नया में लेगी न दी जाय तो यद्द पाप का काम नहीं, पर करुणा का काम है। किसी को सुधारने के लिये, 'रोटी न दी जायगी' ऐसा मय दिखाना सापेक्ष में गिना गया है।

मित्रों! आर टोगों को समुच्चय रूप में अतिचारों के रूप बन गये मये हैं। आपको चाहिये कि इन में सापेक्ष और निरपेक्ष का ध्यान रख-कर इस व्रत को पालने की अन्नय कोशील करें।



हिंसा के कार्य और उनसे बचने का उपाय ।



श्री ! हिंसा बुरी है ऐसा सारा जगत कहता है पर इसके सचे स्वरूप को समझे बिना इस से बच नहीं सकते । हिंसा का स्वरूप शास्त्र में निराले निराले ढग से बतलाया है, इसका यही मतलब है कि मनुष्य इसके वास्तविक रूप को पहचान ले । वस्तुके गुण दोष को अनेक रूप से बतलाने का तात्पर्य केवल यही है कि यदि वह वस्तु अच्छी हो तो उसके प्रति लोग आदर, और बुरी हो तो उसका तिरस्कार करें-धिकार करें ।

प्यारे भाइयों ! आत्मा हिंसा कम करती है और दया कम, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूँ ।

आत्मा में दो गुण हैं-शुभगुण और अशुभगुण । शुभ गुण में प्रवृत्त होने से आत्मा दया करती है और अशुभ में प्रवृत्त होने से हिंसा ।

हिंसा और अहिंसा आत्मा के परिणाम हैं । इस पर गणपतिने शास्त्र के आदर बड़ी ही मार्मिकता के साथ चर्चा चलाई है । उनके परिश्रम का लाभ लेना प्रत्येक मनुष्य के लिये शुभदायी होगा ।

शास्त्र में जिस प्रकार एक वस्तु के अनेक भेद बतलाये हैं उसी प्रकार हिंसा के भी कई भेद बतलाये हैं । इसका कारण यही है कि किसी भी प्रकार से लोग हिंसा से बचें । हिंसा के बुरे गुणों को प्रगट करना, हिंसा पर कोई क्रोध नहीं है, यह तो उसके सचे स्वरूपको बतलाना है ।

वस्तु के यथार्थ गुण शोष बतलाना ससार कल्याण के लिये बहुत जरूरी है ।

शास्त्र यदि हिंसा अहिंसा का रूप न समझाये तो मनुष्य उसमें दूर कैसे रह सकता है ? जो मनुष्य सर्प के जानि स्वभाव को नहीं जानता वह उसके डसने से कैसे बच सकता है । जो जहर के गुण को नहीं जानता, वह अवश्यहा धोखा खा जाता है । इसी प्रकार जो हिंसा के रूप को नहीं जानता वह उससे बच नहीं सकता ।

हिंसा से बचनेवाले प्राणी की आत्मा में अपूर्व जागृति उत्पन्न होती है । हिंसा से बचना दयानान् का खास लक्षण है ।

प्यारे मित्रों ! सब प्राणियों ने अपनी अपना रक्षा के लिये—खाने के लिये दाढ़ व दाँत, देखने के लिये नेत्र, सुनने के लिये कान, सूँघने के लिये नाक, चखने के लिये जीभ आदि अग उपाग अपने अपने पूर्व कर्म के अनुसार प्राप्त किये हैं । इनको छीन लेनेका मनुष्य को कोई अधिकार नहीं है । जो मनुष्य मक्खी के पल्ल को नहीं बना सकता उसे, उसको नष्ट करने का अधिकार नहीं है । परन्तु स्वार्थ ऐसी चीज है कि इसका ओट में कुछ भी नहीं दिखता । जो अग उपाग दूसरे के लिये उपयोगी है, मनुष्य कहा करते हैं कि यह तो हमारे लिये पैदा किया गया है । ऐसे कहनेवाले को सिंह मनुष्य की भाषा में कहे कि तुमारे खाने के लिये पैदा किया गया है, तो वह मनुष्य उसे क्या जवाब देगा ?

मित्रों ! वे सब स्वार्थ है, इसी कारण अज्ञानी मनुष्य अपने अज्ञान से यद्वातद्वा ऐसी हिंसा करने का पाप किया करता है । ज्ञानी पुरुष ऐसा कभी नहीं करता । वह सब प्राणियों को सुख का अभिलाषी समझता है । वह किसी के द्वारा किसी प्राणी का हिंसा करने का अधिकार नहीं समझता ।

जो दूसरे के हाड लेता है, क्या उसके हाड (हड्डियों) बचे रहेंगे ? कभी नष्ट न होंगे ?

‘ होंगे । ’

जो दूसरे के मांस को हरण करेगा, क्या उसके मांसका कभी नाश न होगा ?

‘ होगा । ’

जो दूसरे का चमड़ा उतारता है, क्या उसका चमड़ा नष्ट न होगा ?

‘ होगा, अवश्य होगा । ’

जो प्राणी जिस जीव की हिंसा करता है उसे उसका बच्चा अवश्य चुकाना पड़ेगा । इसीलिये ज्ञानी कभी हिंसा नहा करते । जो अज्ञान से हिंसा करते हैं वे उसे योग्य उपदेश देकर गुडाने का प्रयत्न करते हैं ।

उदयपुर में एक वकील ने पूछा कि ‘ महाराज ! आत्मा जत्र अजर अमर है तत्र जीव रक्षा की क्या जरूरत ? ’

मैंने कहा—आत्मा अजर अमर है तभी तो दया की जरूरत है । यदि आत्मा नष्ट हो जाती हो तो फिर न मारने वाले को पाप और न मरने वाले को ।

प्यारे भाइयों ! पहले आप लोग आत्मा के स्वरूप को ठीक तौर से समझो । समझने के बाद ही आप कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान के बिना भक्ष्याभक्ष्य का भी कैसे तयार रह सकता है ?

कई भाई कर्तव्याकर्तृ य के ज्ञान न गवने मे ही अभक्ष्य-अमद्य
 जैसे मास और अभक्ष्य-पेय, जैसे शराब आदि का उपयोग करते हैं।
 बीबी सिगरेट चुरुट भी उसीके अज्ञान से लोग काम में लाते हैं।

याद रखिये, मास और शराब आदि खाने पीने में पाप तो है।
 पर साथ में यह अस्वाभाविक भी है।

मैंने एक पादरी की लिखा पुस्तक में पढ़ा था कि हिन्दू लोगों
 से हम (ईसाई) विशेष दया रखने वाले हैं। हिन्दू शाबों के अनुसार
 गेहूँ आदि पदार्थों में जीव है। हिन्दू लोग गेहूँओं को पिटाकर खाते
 हैं, इसमें कितनी हिंसा होती है। एक बात और भी है जब गेहूँ आदि
 की खेता फी जाती है, तब भी पाना के मिट्टी के, और न जाने कौन
 कौन से हजारों जीवों की हत्या होता है, तब कहीं जाकर वे [हिन्दू]
 अपना पेट भरने में समर्थ होते हैं। इस पर भी वे अपने को अहिंसक
 मानते हैं।

हम (ईसाई) लोग सिर्फ एक बकरे को मारते हैं इससे एक ही
 अधिक का पेट भर जाता है। हिंसा बहुत कम होती है।

मित्रों ! पादरी न अपनी पुस्तक में, जो इस प्रकार लिखा है,
 क्या आप इसका उत्तर दे सकते हैं ?

आप लोगों की चुप्पी से माउम होता है कि आप इसका उत्तर
 नहीं दे सकते। खैर, सुनिये—

जो पादरी अपने को कम, और हिन्दूओंको हिंसक विशेष रूप
 से मानता है वह अनजान भोले लोगों की आंखों में धूल झाँकने का
 काम करता है। वह इस दलील से हिन्दूओं के प्रति घृणा प्रकट
 करवाना चाहता है। और चाहता है कि 'इस दलील के सुनने से
 लोगों पर हमारी छाप पड़ जायगी और ईशु के घरणों में बहुत से लोगों

बालों को राक्षसी-प्रकृतिवाले बना दिये हैं और उनके सुखमय जीवन को दुःख में परिणित कर दिया है ।

जिस घर में शराब पीने का रिवाज है, जरा उस घर की दशा तो देखिये ! छिपे बचे टुकड़े टुकड़े के लिये हाय हाय फरते हैं पर यह शराब का शौकीन शराब के नशे में झूमता है ! उसके धन का शक्ति का, समयका नाश होता है, पर उसे कुछ भी पता नहीं ।

मांस खाना अ-स्वाभाविक है, यह मैं पहले कह चुका हूँ । मांस खाना अच्छा है या बुरा, इसकी परीक्षा अमेरिका में १०००० विद्यार्थियों पर की गई थी । पाँच हजार विद्यार्थियों को केवल शाकाहार-फल-दूध अन्न आदिपर और पाँच हजार विद्यार्थियों को मासाहार पर रक्वे । ६ महिने बाद जाँच करने पर मांसम हुआ कि जो विद्यार्थी मासाहार पर रक्वे गये थे उनकी वनिस्पत शाकाहारवाले सब बातों में तेज रहे । शाकाहारियों में दया, क्षमा, वीरता गुण प्रगट हुए और मासाहारियों में क्रोध, क्रूरता, भीरुता आदि । मासाहारियों से शाकाहारियों में बल विशेष पाया गया । इनमें मानसिक प्रकाश भी अच्छा हुआ । इस फल को देख कर वहाँ के छात्रों मनुष्यों ने मांस खाना सदैव के लिये छोड़ दिया ।

श्री गांधीजी जिस समय प्रियतमके एक शहर में किसी के घर निमन्त्रित हुए तो वहाँ क्या देखते हैं कि बहुत से यूरोपियन शाकाहारी थे, वनिस्पत हिन्दुस्थानियों के ।

मासाहार मनुष्यों के लिये स्वाभाविक है या अ-स्वाभाविक इसकी जाँच अमेरिका में हुई, उसका नतीजा आपने सुना, अब एक और जाँच आप कीजिये । यह जाँच पशुओं पर से होनी चाहिये । क्यों कि मनुष्य न अपनी बुद्धि का विकास किया है इसलिये इसने अ-स्वाभाविक को भा स्वाभाविक मान लिया है । वहील लोग बेईमानी को जितना सचा

सकता। पर हम देखते हैं कि शराब व मास के बिना आज लोग
की सट्टा में जी रहे हैं।

शराब के कारण कई राजाओंका खून हुआ है और कई राज
शियों ने शराब के नशे में अपनी माँ बहिनों के साथ कुछ किया है,
ऐसा सुनने में आया है। सच बात तो यह है कि शराब पीने पर
दिख पर ऐसा नाच बसर होना है कि मले घुरे का कुछ भा धन
नहीं रहना। यही क्यों, आप चुट्ट को ही लीजिये। एक अंग्रेज विद्वान
को चुट्ट पीने का बहुत शौक था। एक दिन उसे चुट्ट के जंगल
नशा मूँच चढ आया। उसकी औरत सोई हुई थी, घुरे से उस
मारना चाहा पर थोड़ी देर में नशे के उतर जाने के बाद इस नशे
विचार पर धिक्कार देने लगा। थोड़ी देर पीछे उसने फिर चुट्ट पी
इस बार उसने अपनी स्त्री को घुरे से मारने का कु-कृत्य कर छे
दिया।

चुट्ट पीने से जब इतना पतन हो जाता है तब शराब से किन्ना
होता होगा, इसका विचार आपही कीजिये।

शराब पाने वालों के हाथ से हजारों मृत हुए हैं।

जिस अमेरिका को आप अनार्य देश कहते हैं वहाँवालों ने इसका
बहिष्कार कर दिया है। पर आपके आर्य देश में इसकी दिन व दिन
बढ़ता हो रही है इसका क्या कारण है ?

शराब और मास का ओसवा जातिने त्याग किया है, पर सुन्ते
हैं कई कौम के दुग्मन ओसवाळ नाम धर कर दुपा रीतिसे इसका
उपयोग करते हैं। जातिवालों की तरफ से इस कृत्य का निरकार
होना चाहिये।

प्यारे मित्रों ! याद रखिये शराब और मास ने कई देवी-प्रति

वाले, मासखानेवाले और अन्नखानेवाले प्राणियों की आत एक सी नहीं होती ।

बदर के शरीर में मास को पचानेवाली आतें नहीं हैं इसलिये वह कभी मास नहीं खाता, फल चट उठाकर खा जाता है । जरा विचार कीजिये जो मनुष्य की शकल का प्राणी (बदर) है, वह तो मास नहीं खाता, पर मनुष्य कहलाने वाला मास खाता है !!

आप जरा पक्षियोंकी तरफ देखिये । आपने कबूतर को कभी कीड़ा खाते देखा है ?

‘ नहीं । ’

‘ और कोए को ? ’

‘ हाँ । ’

‘ क्या आप जानते हे कि कबूतर को और कोए को यह पाठ किसने पढाया ? ’

‘ प्रकृति ने । ’

आपने कभी तोतेको मास खाते देखा है ?

‘ नहीं । ’

वह आपकी भाषा सिखाने से सीख सकता है । जो मनुष्यकी भाषा सीखे वह तो मास नहा खाता पर जिसकी अपनी भाषा है वह मनुष्य मांस खाय यह कितनी लज्जाकी बात है ।

अरे मनुष्य ! तू तकदीर लेकर आया है जरा तकदीर पर भरोसा रख और प्रकृतिके कानून को मत तोड । क्या मांसखानेवाले भूखों मरते हे ?

हम देखते हैं कि जितने मांसाहारी भूखों मरते हैं उतने शाकाहारी भूखों नहा मरते ।

व्यवहार दृष्टि से शाकाहार हर प्रकारसे सुखी और मासहारी
दुःख दिखाने देते हैं ।

प्यार मित्रों ! मुझे विश्वास है कि आप लोग मांस का सेवन नहीं
करते । ऊपर जो विवेचन किया गया है वह इसलिये कि आप मनुष्य
गुण दोष का जरा तर्क समझ जाँय और इसके सेवन करनेवाले
भाइयों को सच्चा मार्ग दिखा सकूँ ।

भाइयों ! यद्यपि आप मांससेवी नहीं हैं पर अहिंसानदी और
'अहिंसा परमो धर्म' के अन्दर विश्वास रखनेके कारण कहा जा रहा है
कि हिंसा के द्वारा होनेवाला आप कोई भी काम न करने में अपन
कर्तव्य समझते हैं । मैं चाहता हूँ कि वैसेही आप, जिन चीजोंके लिये
हिंसा होती है, उसको भी पापपूर्ण समझ कर त्याग कर देंगे ।

कई चीजें आज बाजारों में ऐसी विक्रयिता दिखाई देती हैं जो ऊपर
से चमकती हुई सुन्दर और साफ दिखाई देती हैं पर उनकी बनावट में
महा हिंसा तथा घृणित रसुओं का उपयोग किया जाता है । आपने विश्र
यती सक्कर देखी होगी । मुना जाता है कि कई भाई आजकल मिर्च
बनान में इसका ग़ुब उपयोग करते हैं । उनका कहना है कि इनमें
मैठ कम होता है और देशी सक्कर के बनिस्पद कुछ सस्ती भा मिलता
है । हाय हाय ! जो भाई एक चिंटी के मारने में पाप समझते हैं वे ही
अज्ञान से कुछ लाभके लिये धर्म तथा देश को पतन के गहरे गहर में
डाल देते हैं । माना कि यह दिखने में साफ और कामन में सस्ती है
पर क्या आपने कभी इसपर विचार किया है कि यह कैसे घृणित प्रकार
से बनाई जाती है* तथा इसके खाने में शरार को क्या हानि लाभ पहुँ
चता है ?

६ (१) 'पत्र साइन्सो पानिया व्रीडानिका' नाम का एक बहुत बड़े
का शोध के बाद तैयार हुआ ग्रन्थ है । जिसके आधार पर सरकार फैसल

भारत में जो सक्कर बनाई जाती है उसमें भी पाप होता है पर विदेशी जितना घोर पाप नह। भारत में बाई जाने वाली सक्कर में रेकीद्रय आदि प्राणियों का रिसा होता है पर पचेन्द्रियों की-गो आदि-जि हैं आप माता के नाम से पुकारते है--की नहीं।

करती है। उसके ६६० वें पृष्ठ पर लिखा है कि- 'सक्कर साफ करते समय हरेक जानवर का रक्त (रून) तथा हड्डिया के कोलसे का चूरा ढालने में आता है।

(२) 'डिक्सनेरी ऑफ थॉमस' छठी आवृत्ति लंदन, पृष्ठ ८२९ में लिखा है कि- 'गागाडे बनाने में आते हैं उस समय २४ मन सक्कर में २० मन हड्डियों के कोलसे का चूरा ढालने में आता है।

(३) स्यामी भास्करानन्द लिखते है कि- "जब मैं विलायत गया तब मैंने कितने ही सक्कर बनाने के कारखाने दरे। उनके पहले खड (मजिल) में पहुचते ही, मुझे उखटी होगी, ऐसा मालूम हुआ। मैं नहा जानता था कि ऐसी अपवित्र चीजों से सक्कर बनती है। पर नजरों दखन पर से खेड आश्रय होता है कि जिन चीजों के स्पर्श में भी महान् पाप लगता है, वे हा, हिन्दू लोगों से किस प्रकार साई जाती ह ? "

(४) 'भारत मित्र' ता २८ १० १९०१ के अंक में लिखा है कि- "अच्छा सक्कर बनाने के लिये जिस प्रकार इस देशमें दूध काम में आता है उमी प्रकार वहाँ (विलायत में) जानवरा के लोही से सक्कर (मॉड) का मैल काटा जाता है। कारण कसाइयानों में, दूध के घनिस्पत लोही सस्ता मिलता है। "

(५) मि हेरिश कहते हैं कि- 'खांड सूधर के लोही से साफ करने में आती है।'

(६) ए जे टेलर सी हैं अपने 'शुगर मशीनरी' नाम के ग्रथ में लिखते हैं कि- 'इंग्लैण्ड वगैरे देशोंमें खांड साफ करते समय पानी और गाय का खून काम में लाया जाता है।'

(७) घबड़ 'ज्ञान-सागर समाचार' ता १० १० १९०५ के अंक में लिखा है कि-परदेसी सक्कर नाना प्रकार के रोगसे पीडित सर्व प्रकार के जीवों

प्यारे मित्रों ! आप इसमें यह मन समझना कि मैं सक्कर एनि का पक्षपाता हूँ। मैं तो सक्कर का कतई बहिष्कार आप लोगों से करवाना चाहता हूँ। कारण यह स्तम्भ का नाम कर्नै मार्ग और शरीर के टिप्पे अ प्राकृतिक चान है।

की हड्डिों बल और सूक्ष्म तथा मनुष्य क मूत्र से माप की जाता है। जिनकी हवा स आ दर, ऐसे को बँगर रागवाल लोगों का भी मूत्र।

(८) 'स्वदेशीयति दपण -परदरा। सक्कर अपवित्र है इतना ही नहीं पर उसके अन्तर क्षा २ प्राणा काग मकाश आनि की अंत मास हाइ वित्र तथा शरीर के अन्तर क रेम होते ह।

भारत खाइ तो पीट घानर ताना बगरा से बनती है पर उसके अन्तर सदा हुआ लोही तथा रागिल जानरों की हड्डिया का मिश्रण होता है।

(९) मि फिनल नामक अमन गृहस्थ लिखत है कि- 'विलायती खाइ, आ भारतवर्ष में फैली है वह दिखने में सफेद और कीमत् में सरती पड़ती है, पर उसके कारण बहुत से राग हिन्दुस्थान में फैल चुक है। यह खाइ शरीर के रक्त को बिगाड़ती है तथा शक्ति का नाश करती है। दूध आदि पदार्थों में अवन इसे डालते हैं, पर अपने को मानना चाहिये कि हम खाइ नहीं पर जहर डाल रहे हैं।

इंग्लैंड और भारतवर्ष में बड़े २ घेद्य और जानरों न स्पष्ट रूप से अपना मत दिया है कि- यह खाइ धर्म शास्त्रकी दृष्टि से तो खाना मता है ही, पर इससे ग्रेग, महामारी इत्यादि रोग होते हैं और बालकों तथा बड़ी उमर वाले मनुष्योंकी मृत्यु मरणा बड़ी है। इंगलिये जो धर्मको न मानता हों उस आरोग्यकी दृष्टिमें भी इसका खाना छोड़ देना चाहिये।

(१०) 'हिन्दी बगवासी' कलकत्ता ता ३० ३ १९०३ के अङ्कमें लिखता है कि सिफ हिन्दुस्थानमें से २८ लाख मन जानवरोंकी हड्डिों, खाइ धीरे खाने के पदार्थ बनाने के लिये विलायत जाती है। स्वदेशी खाइ कदाचित परदेशी से महगी मिले तो भी उसमें अपवित्रता और तत्पुरुस्ती है तथा मीठास पमादा हाता है, उसको खरीदनी चाहिये। जिसकी शक्ति स्वदेशी खाइ घापर नैपी नहीं है, उस गुद काम में लाता चाहिये इससे गौहत्या अटकेगी और मनुष्योंकी बुद्धि हाकर दूध भी पड़ी बँगर सरते होंगे।

यदि आप इसकी सत्यता की परीक्षा करना चाहते हैं तो मैं आप से पूँछता हूँ कि क्या आप केवल पाँच दिन तक सक्कर के ऊपर दिन निकाल सकते हैं ?

‘ नहीं । ’

और रोटियों पर ?

‘ सारी जिंदगी । ’

तब बतलाईये प्राकृतिक याने शरीर को लाभ पहुँचाने वाली इन दोनों चीजों में से कौन नुई ?

लोग कहते हैं ‘ रॉडों ने दुनियाँ को बिगाड दिया । ’ मैं कहता हूँ कि जितना खॉड (सक्कर) ने दुनियाँ को बिगाडा है, उतना नहा ।

अरुबर बादशाहा के जैसे मुगल राज्य में भारत में ३ से ४ रु मन तक घी मिलता था । एक रुपये के ७ सेर घी की बात तो आज भी आप अपने बड़े बडेरों से पूँछ सकते हैं । उस समय के लोग आज की तरह चाय की महमानी नहीं करते थे । उस समय चाय का प्रचार हिन्दुस्तान में आज की तरह नहीं था । यहाँ चाय का विशेष प्रचार लार्ड कर्जन के जमाने से हुआ । चाय शरीर के लिये नुकसानकारक और बडी ही अपवित्र वस्तु है । चाय अनेक गरीब लोगों की अश्रुपारा से सींची

देशी ओर विलायती सक्कर की परीक्षा -

(१) देशी और विलायती दोनों सक्कर को शुदे २ अर्तन में रखो । फिर दोनों में थोड़ा २ सरकारीक पन्निड (राधक का तेजाय) डालो । देशी सक्कर में मैं तुरत मीठी मट्टी जैसी सुवास और मोरसम स दुर्गंध आवेगी ।

(२) काच के गिलास में गरम पानी भरकर उसमें थोड़ी मोरसम मक्कर डालिये गलते समय सूक्ष्मशक्यत्र में देखेंगे ता लोहीके रजकण दिग्गलाड दगे ।

जाती है, यह आपको अभी मादूम नहीं पड सकती, पर जत्र इस पर
बेशेष विचार करने का मौका होगा तत्र आपको मादूम पडेगी कि किम
प्रकार बहनों और बच्चों की हाय हाय और त्राय त्राय से यह चाय बढ़ाई
जाती है ! किम प्रकार गरमियों का पर्माना और रून एक होता है !

मित्रों ! ये भाई बहन और बच्च ओर कई नहीं, आपके भारताय
ही है । इन बेचारों को चाय के खेतों में निर्दय अंप्रज व्यापारियों के
द्वारा सदैव मार सहनी पडती है । क्या ऐसी पापमय चाय का पान
करना आप ठीक समझेंगे ?*

प्यारे मित्रों ! चाय की ही वजह से आज हि दुग्धान में खोड की
ज्यादा माँग बड गई है । लग यदि नुकमानकारक इस चाय को छोड
दे तो विश्वास है कि आपको विदेशी अपवित्र खोंड मगजानी ही न पडे ।

पहले के लोग खोंड के ज्याग शौकान नहीं थे । खोंड का मिठा-
इये भी इतना नहीं पनता था । लोग ज्यादातर गुड की लपसा से ही
अपना काम निकालते थे ।

भारत के लोगों में ज्यों ज्यों ऐश आरामी बढती गई त्यों त्यों सुख
माल होकर हरेक विगयता चीजों का ही पसंद करने लगे ।

पहले के लोगों का सिद्धा न था— ' मोटा खाना मोटा पहिनना ।'
पर अब ' पतला खाना और पतला पहिनना ' हो गया है । कहाँ है
अब वह बच्चों की सुंदर हास्यमयी माधुरा और कहाँ है वह जवानों का
जोश ?

प्यारे मादूम ! आपना यह पेश आरामा बडा खतरनाक है ।
पह न केवल डहलोरु का, पर परलोक की भी टुल देनेमाला है ।

७ चाय पर विशय विचार किसा अगर्दी का पुस्तक में प्रकाशित किया

।

—सम्पादक ।

इहोक्त की तो यों हे कि इसके प्रताप से आप दिन दिन शक्ति हीन हो रहे हैं, और शोकिनी चीजें करीब करीब तमाम ही प्रदेश में जाने से दराद्र भा । ओर परलोक की यों कि शोक करने की जितना भी चाजें आज दिखाई देती हैं वे प्रायः महापाप से बनती हैं ।

शोक की चाजों में सत्र में पहला नवर कपडे का ह । आज कल कपडा प्रायः विलापत से आता है । यह दिराने में चटकीला मटकीला और सुंदर होता है पर कई विद्वान् अंग्रेजों ने अपना पुस्तकों में लिखा है कि इनके प्रनाने में चर्मी आदि काम में लाई जाती है ।

सुना गया है कि चर्मा योग्य प्रमाण में सींगी न मिल सकने के कारण कसार्खानों में सैकड़ों मूक गरीब प्राणियों का वे-रहमी के साथ नित्य कल्ल होता है ।

मित्रों ! यह कलखाना आप लोगों और केवल आप लोगों के लिये चल रहा है । यदि आप अपनी मोज शोक को कम कर दें तो यह होनेवाला भयकर हत्याकांड शीघ्र बंद हो सकता है ।

मेरा यह कटाक्ष न केवल विदेशी वखों का तरफ है पर उन वखों की तरफ भा समझिये जो भारत की मिलों में तैयार होते हुए भी चर्मी आदिसे बचे हुए नहीं हैं ।

मित्रों ! जरा विचार तो कीजिये कि आप किमकी सतान हैं । आप उन वीर क्षत्रियों की सतान है जिन्होंने दृमर्गों की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया पर उस शरणागत का एक बाल भी बाँका न होने दिया । आप लोग इस वीर का नाम जानते हैं ? इस वीर का नाम था—राजा मेघरथ ।

एक दिन की बात है, राजा मेघरथ अपने धर्मग्यान में बैठा हुआ था। एक भयभ्रांत कवच उड़ता हुआ उनकी गोद में आ गया । गोला—

‘ राजन् ! मैं आपका शरण हूँ, मेरा रक्षा काजिये । ’

राजा आश्चर्य देते हुए—“ तुम किसी प्रकार से मत डरो । मैं तुम्हारी हर प्रकार रक्षा करूँगा । ”

इतने में एक शिकारी (पारधी) दौड़ता हुआ आया । वह टगोट पहिने हुए था । उसका शरार काला, होठ मोटे, केश बिखरे हुए और माँले छाल थीं । बोला—

“ राजा, मेरी शिकार दो । ”

राजा शांति से—“ भाई, मैं तुम्हें इसे नहीं दे सकता । कारण, यह मेरी शरण में आगया है । ”

शिकारी—“ बस बम, मेरी शिकार फेंक दो ! नहीं तो ठीक न होगा । ”

आज कल जैसा कोई राजा होता तो उसे बके देकर उसी वक्त निकलवा देता पर मेरुस्थ राजा ऐसा न था । वह दुष्टों पर भी दया और क्रूरों को भी सुधारने वाला था ।

“ भाई ! क्या करोगे ? ” राजा ने पूँछा ।

शिकारी—“ क्या क्या करूँगा अपना दुःख मिटाऊँगा, मुझे भूख लग रही है । ”

राजा—“ भूख लग रही है तो तुझे खाने को देता हूँ, चाहे सो लेले । ”

शिकारी—“ क्या तू मुझे धर्म का देना चाहता है ? मैं धर्म का नहीं लेता । मैं अपने उद्योग से अपना पेट भरना चाहता हूँ । ”

राजा—“ बहुत अच्छा, भूख तो लेनी ही नहीं चाहिये । मैं तुझे भीख नहीं देता पर चीज लेकर चीज देता हूँ । ”

शिकारी—“ कैसे ? ”

राजा—“ मुझे यह कबूतर पसंद आगया, मैं इसके बदले में, तु मागे सो देनेको तैयार हूँ । ”

शिकारी—“ ऐसा ? अ ठा, मैं मोंगूंगा यह देगा ? ”

राजा—“ बराबर । ”

शिकारी—“ देखना, अपनी जवानसे फिर मत जाना। मैं एसी बेसी चाज मांगनेवाला नहीं हूँ, या मुने अपनी शिकार दे दे । ”

राजा—“ कबूतर को छोडकर चाहे सो माग ले सन कुठ देनेको तैयार हूँ । ”

शिकारी—“ अ ठा तो मुझे इस कबूतरके बराबर अपने शरीर का मांस दे दे । ”

मित्रों ! राजा मेघरथ अपने शरीरको नाशवान् समझ कर इस धातको कबूठ करता है ओर अपने शरीर का मांस काट कर दे देता है ।

जिनके पूर्वज एरु प्राणीजी रक्षाके लिये अपने शरीर का मांस काट कर देना कबूठ कर लेता हे पर प्राणी की हिंसा नहीं होने देता । अब उन्हाकी सतान अपने तुच्छ मांज-शौंक के लिये हजारों प्राणियों के नाश को देखकर भी हृदय में दया न लाये उन्हें क्या कहना चाहिये ?

आपके पूर्वज पहले बिना चर्बीका, देशका बना कपडा पहनते थे, जिसे आज के लोग ' खादी ' के नामसे पुकारते हे ।

मित्रों ! खादी के उपयोग से न केवल पैसेकी ही बचत होती है पर धर्म भी होता है ।

त्रिस्तुट त्रिस्तुट आते हैं, आपके कई देश भाई उनको मजे से खाते हैं, यह रोटी की पराधीनता नहीं तो और क्या है ?

सुनते हैं, देश में ' रेजिस्ट्रिड ' नाम का नकली घी (1) तो पैग ही था, अब एक प्रकार की लकड़ी का आटा भी आने लग गया है।

प्यारे भाइयों ! ये त्रिस्तुट, यह घी, और यह आटा आपके शरीर का कितना नाश करने वाला है ? त्रिस्तुट आदि खाद्य पदार्थ किस प्रकार सड़ा कर बनाये जाते हैं और आप लोग उसके डिब्बों पर के षटकाले सुन्दर मनमोहक लेबल देख कर किस प्रकार खरीद कर पेट भर रख देते हैं !

पहले के लोग देशी सादी जूतियाँ पहनते थे, पर अब आप में से अधिकांश लोग त्रिस्तुट जूतियों का उपयोग करना ज्यादा पसन्द करते हैं। देशी जूती मरे हुए जानवरों के चमड़े से बनती है पर त्रिस्तुट जूतियों के लिये सैकड़ों पशुओं का कत्ल किया जाता है। चमड़ा जितना मोटा और मुलायम हो उतना ही वह अच्छा गिना जाता है। इसी कार्य को सिद्ध करने के लिये हत्यारे लोग पशुओं को पहले खरीद लेते हैं, बाद में कई दिनों तक भूखों रख कर उनका चर्चा गला देते हैं, फिर लठ्ठों की मार से वे इस बुरा तरह से मारते हैं कि उनका सारा शरीर रोटी का तरह फूल जाता है। अंत में ये हत्यारे कल करने की मशीनों के अगाड़ी हरा हरा कोमल घास डालते हैं। ये विचारे अनेक दिनों के भूखे प्यासे अबोध पशु अपने पेट की तीव्र व्याग मिटाने के लिये यों ही खाने के लिये उस पर मुँह डालते हैं यों ही मशीन की मोटी और घनचमाती हुई तेज चुरी कर-र-र करती हुई उनकी गर्दनो पर बेरहमी से गिर कर उनके सिर को धड़ से अलग कर देता है ' उठ-पड़ते हुए उन पशुओं के शरीर, निकलनी हुई उनमें से रक्त की अनेक

प्रियायता कपड़ों का जन्म इस देश में प्रचार नहीं था तब अखिल मनुष्य स्त्री-पुरुषों के द्वारा अपने पेट भर लेते थे। इतिहास कहता है कि बाद में स्त्रियों अज्ञान उन विचारे गरीबों के अगूठ कटका लिये और अपने देश (प्रियायत) के उखरों का यहाँ प्रचार बढ़ा दिया। मिला भा यहाँ भेज दिये गये। इन मिला से भा देशके मनुष्योंका क्षति कम न हुई। मैरुटों मनुष्योंकी रोग पर कुछ मनुष्य ही हाथ साफ करने लगे और बाकी के भूखों मरने लगे। टेंगका सोभाग्य समझिये कि बाद में गुरुओं और देशके नेताओंने इस भयकर अत्याचार को पढ़चाना और चले का पुनर्निर्माण किया। चले के द्वारा आज फिरसे सैकड़ों भाई-बहनको रोटी हाथ आने लग गई। जो भाई खादा का उपयोग करता है, वह गुप्त रीतिसे इन गराब भाई बहनों को मदद पहुँचा कर पुण्योपार्जन करता है।

मित्रों ! याद रखिये, खादी सादी और देश का आजादी है।

मित्रों, क्या आप जानते हैं कि देश पराधीन कब होता है ?

“ नहीं । ”

मैं बताना हूँ। जो देश खर खर रोटी के लिये दूसरे का मुँह नहीं ताकता, वह कभी पराधीन नहीं हो सकता पर जो इन दो बातों के लिये दूसरों का तरफ देखना है वह गुलाम बने बिना नहीं रह सकता।

यह देश खर से लो गुलाम बन ही चुका, अब रोटी के लिये भी दूसरे के पास हाथ पसार ने लग गया है।

मित्रों ! रोटी से मन्त्र जाप अपने घर-दरवाजे के लिये का ही बान बन भग लेना। रोटी में मेरा मन्त्र गाए पान का चीजों से है।

क लिये यहाँ आये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप बाहर दिख-
 ष्ये तब मात्र पडेगी कि आप मे दया हे ।

‘दया’ शब्द दय् रक्षणे धातुसे बना हे । इसका अर्थ दूसरों पर
 अनुकम्पा (करुणा) लाना हे ।

आपको दया कहाँ करनी चाहिये ? क्या मेरे पास आकर² नहीं,
 मेरे पास तो आप करते ही हैं ।

दया का उपयोग वहाँ करनी चाहिये जहाँ बे-कसूर हजारों मृत
 प्राणी छुी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खजर
 मार दिया जाता हे, उन बेचारों के रून से नदी का छोटा सा नाश बह
 नेकलता हे ।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये हे ?

‘ नहीं । ’

करने हैं ?

यदि ‘हाँ’ तो आप कल्लखाने में दर्शन कीजिये ।

यूरोपियन सज्जन टाल्सटाय एक बडे विद्वान् ओर विचारशाल
 इंसान माने गये हैं । ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना
 सब बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं । उनका
 उर्ध्व जीवन था । इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतना था
 कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पडे गिना न रहती थी । इनका इतना
 मिर्मय जीवन कमाई खाने को देख कर हुआ था । कहा जाता हे कि
 । हमेशा कमाईखाने में पशु-वध देखने जाते । वहाँ पशुओं ऊपर
 टुरी चलने पर उनकी तडफडाट देख कर रोमाचिन हो जाने, वबडा
 गते और विचार करते, कि—हाय ! यदि इसी प्रकार यह टुरी हमारे
 पर चले तो हमें कितना दुःख हो ? कितने टपटपये ? ये विचारे मूक

तेन धाराएँ चार नाचती हूँ उनकी पुतलियें देख कर उस समय किम का हृदय करुणा से न उभरेगा ? कौन उस बिभत्स हृदय को देग रोमाञ्चित न होगा ? और कौन कठोर हृदय उस अनसर पर न रो पड़ेगा ?

मित्रों ! क्या भोज शक के तुच्छ सुप के लिये ऐसे भयानक हत्याकाण्ड का माग बनना योग्य है ? यदि नहा, तो आप सिर्फ गूठ ही नहीं, पर ऐसे ऐसे भयानक हत्याकाण्ड जिस वस्तु के बनाने के लिये रचे जाते हों, उन सब का त्याग कर दाजिये ।

मित्रों ! आप मर पाम दया देवी के दर्शन करने के लिये हैं तो आये ह न ?

श्रावक—‘जी हा ।’

क्या आप जानते ह कि दया देवी का मन्दिर कहाँ है ?

श्रावक—‘हृदय म ।’

भाई माहब्रों ! दया माना यदि हृदय में होती तो दया के उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पड़ती । हृदय में दया हो, क्या ऐसी हाकत में ‘दया दया’ पुकारने की जरूरत पड सकती है ?

‘नहा ।’

जिसके शरार में चतय है उसे फिर कोई बुढायगा ?

‘नही ।’

क्या चेतय ठिया रह सकता है ?

‘नहा ।’

मित्र मित्रों ! तिन प्रकार आप लोग धर्म की स्थूल त्रिया करन

क लिये पहुँ आये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप बाहर दिख-
 ष्य तब मादृम पड़ेगी कि आप में दया है ।

‘ दया ’ शब्द दय् रक्षणे धातुसे बना है । इसका अर्थ दूसरों पर
 धनुकम्पा (करुणा) लाना है ।

आपको दया कहाँ करनी चाहिये ? क्या मेरे पास जाकर^२ नहीं,
 मेरे पास तो आप करते ही हैं ।

दया का उपयोग वहाँ कर-कीजिये जहाँ बे-कसूर हजारों मूक
 प्राणा टुरी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खजर
 घड़ा दिया जाता है, उन बेचारों के रून से नदी का छोटा सा नाश बह
 निकलता है ।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये ह^२

‘ नहीं । ’

करने हैं ?

यदि ‘ हाँ ’ तो आप कल्लियाने में दर्शन कीजिये ।

यूरोपियन सज्जन टान्सट्राय एक बड़े विद्वान् और विचारशील
 पुरुष माने गये हैं । ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना
 उच्च बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं । उनका
 धर्म जीवन था । इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतना था
 कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पड़े बिना न रहती थी । इनका इतना
 धर्म-मय जीवन कसाई खाने को देख कर डुबा था । कहा जाता है कि
 ये हमेशा कमाई-खाने में पशु-वध देखने जाते । वहाँ पशुओं ऊपर
 टुरी चढ़ने पर उनकी तडफडाट देख कर रोमांचित हो जाते, धक्का
 खाते और विचार करते, कि—हाय ! यदि इसी प्रकार यह टुरी हमारे
 ऊपर चड़े तो हमें कितना दुःख हो ? कितने उटपटाये ? ये विचारे मूक

तेज धाराएँ और नाचनी हुई उनकी पुतलियाँ देख कर उस समय किस का हृदय फटना से न उभरेगा ? कौन उस विभक्त हृदय को देख रोना बित न होगा ? और कौन कठोर हृदय उस अनसर पर न रो पड़ेगा ?

मित्रों ! क्या मान्य शक्ति के तुच्छ सुख के लिये ऐसे भयानक हत्याकाण्ड का माग बनना योग्य है ? यदि नहीं, तो आप सिर्फ मूढ़ ही नहीं, पर ऐसे ऐसे भयानक हत्याकाण्ड जिस वस्तु के बनाने के लिये रचे जाते हैं, उन सब का त्याग कर दीजिये ।

मित्रों ! आप मेरे पाम दया देवी के दर्शन करने के लिये ही तो आये हैं न ?

श्रावक—‘जी हाँ ।’

क्या आप जानते हैं कि दया देवी का मन्दिर कहाँ है ?

श्रावक—‘हृदय में ।’

भाई साहजों ! दया माता यदि हृदय में होती तो दया के उपदेश देने की जरूरत ही नहीं पड़ती । हृदय में दया हो, क्या ऐसी दारुणता में ‘दया दया’ पुकारों की जरूरत पड़ सकती है ?

‘नहीं ।’

किसके शरार में चतन्य है उसे फिर कोई बुलायगा ?

‘नहीं ।’

क्या चेतन्य ठिप्पा रह सकता है ?

‘नहीं ।’

प्रिय मित्रों ! किस प्रकार आप लोग धर्म की स्थूल क्रिया करने

किये वहाँ भाये हो उसी प्रकार दया का भी स्थूल रूप बाहर दिख-
भय तब मात्र पड़ेगी कि आप में दया है ।

‘दया’ शब्द दय रक्षणे धातुसे बना है । इसका अर्थ दूसरों पर
दुकम्पा (करुणा) लाना है ।

आपको दया कौन करनी चाहिये ? क्या मेरे पास जाकर ? नहीं,
मेरे पास तो आप करते ही हैं ।

दया का उपयोग वहाँ ~~काम~~ कीजिये जहाँ बे-कसूर हजारों मूक
लगा छुरी के घाट उतार दिये जाते हैं, उनके गले पर खटाखट खजर
लगा दिया जाता है, उन बेचारों के गून से नदी का ओटा सा नाश बढ़
फलता है ।

क्या कभी आपने दया माता के दर्शन किये हैं ?

‘नहीं ।’

करने हैं ?

यदि ‘हाँ’ तो आप कल्लखाने में दर्शन कीजिये ।

यूरोपियन सज्जन टान्सट्राय एक बड़े विद्वान् और विचारशील
पुरुष माने गये हैं । ये कोरे विद्वान् ही नहीं पर अपने जीवन को इतना
उचे बना लिया था कि एक आदर्श पुरुष भी माने जाते हैं । उनका
एक धर्म जीवन था । इनके जीवन का एक एक दिन ऐसा बीतना था
कि इनकी छाप दूसरे मनुष्य पर पड़े बिना न रहती थी । इनका इतना
धर्म-मय जीवन कसौटी खाने को देख कर हुआ था । कहा जाता है कि
ये हमेशा कमाईखाने में पशु-वध देखने जाते । वहाँ पशुओं का
छुरी चलने पर उनकी तडफडाट देख कर रोमांचित हो जाते, ~~रुद्ध~~
जाते और विचार करते, कि-हाय ! यदि इसी प्रकार यह ~~पुरुष~~
उपर चढ़े तो हमें कितना दुःख ही ? कितने ~~पटपटाये~~ ? ये ~~किन्ने~~

शास्त्रकी बात इस समय कुछ न कहकर पाश्चात्यों का इस विषय पर क्या मन है, साइटीफिकिस्टोंने इस पर क्या राय जाहिर की है, यह सुनिये—

वे कहते हैं कि प्रकृति की वस्तुओं में गति की प्रतिगति और आघात का प्रत्याघात होता रहता है। उदाहरण रूप एक पर्यट के पास शरफर आयाज दी गई कि 'तुम्हारा बाप चोर।' तो उसकी प्रति ध्वनि निकलेगी— 'तुम्हारा बाप चोर।' जैसी ध्वनि की जायगी वैसी ही प्रतिध्वनि निकलेगी। अगर कोई अपने बापको चोर कहलाना चाहे तो उसे कहे कि 'तुम्हारा बाप चोर।' यदि न चाहे तो न कहे। जिस प्रकार प्रतिध्वनि में 'तुम्हारा बाप चोर' कहा, इससे तुम्हें दुःख होता है, ऐसा समझ कर किसी को कष्ट शब्द कभी न कहने चाहिये।

मगल से मगल और अमगल से अमगल होता है। गति की प्रति गति और अघात का प्रत्याघात होता रहता है। जो पार्टी आज दूसरों से करवाते हों, वही पार्टी कभी तुम्हें करना पड़ेगा। साराश यह कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हें कष्ट मिलेगा। तुम किसी के प्राण लगे तो कभी तुम्हें प्राण देने पड़ेंगे। शत्रु से गर्दन उड़ाओगे तो वापस गर्दन उड़ेगी। मांस खाओगे तो अपने शरीर का मांस खिलाना पड़ेगा।

हाँ, एक बात जरूर है, जीवन निर्वाह के लिये प्रकृति की शोभा न विगडे, इसको ध्यान में रखकर सरलता से, बिना किसी को दुःख दिये अपने निर्वाह का आयोजन किया जाता है; उसे अर्म नहीं कह सकते। धर्म किसी का नाश नहीं चाहता। जो मनुष्य नीति से पैसा पैदा करता है, उसे कोई चोर बदमाश कह कर दड देता है ?

‘ नहीं ।’

पर जो नाति जनीति या कुछ भी खयाल न कर केवल पैसा से अपना जेब भरना चाहता है उसे ज़ाँई क्या कहेगा ?

‘ चोर , बदमाश आदि । ’

उसे दंड मिलेगा ?

‘ अचरप । ’

यही बात अपने निर्वाह कार्य के लिये समझनी चाहिये । जो अपने मौज शौक के फत्तर में आकर मूस प्राणियों का बध करता है, उसे भी दंड मिले बिना न रहेगा ।

माता के स्तन से बालक दूध पीता है यह उसका धर्म है, पर जो बालक माता के दूध की जगह स्तन का खून पीना चाहता है, क्या उसे कोई बालक या पुत्र कहेगा ?

‘ नहीं । ’

लोग उस बालक को बालक या पुत्र नहीं पर जहरीला कीड़ा कहेंगे ।

यह प्रकृति गौ, भैंस, बकरी आदि से दूध दिखानी है । जगत का इससे बड़ा उपकार होता है पर लोगों की अजब ताकीद इन उपकारी पशुओं का जल्दी खात्मा कर, एक दो दिन पेट भर कर अ्यादा दिन तक पेट भरने वाले घी दूध के छोट को बध कर देती है । इसका मतलब यह हुआ कि फलों को धीरे धीरे आते देख कर वृक्ष का मूलोच्छेदन कर लिया गया ।

इन विचारे मूक प्राणियों की बफ़ालत कौन कर ? गजब की बात है कि साक्षात् इनकी करणामयी चीख को सुनकर भी हत्यारों का दिल पत्थर सा क्यों रहता है ? परतत्र हैं इसलिये । इनको काम क्रोध मोह

बादि ने अपने वश में इस प्रकार कर लिये हैं कि इनको कुछ सूझता ही नहीं।

आप लोगों में मे बहुत से भाई निमासाहारी है। ये अपने मन में सोचते हैं कि मासाहारी ही पापी होते हैं, हम तो इस पाप से बचे हुए हैं। लोगों को दूसरे की बात की कड़ी टीका सुन कर मजा आता है पर जब उनके स्वार्थ के काम की कोई टीका करता है तब उनको अच्छी नहा लगती। अच्छी लगे या न लगे सच्चा आदमी तो गुण दोष बतला ही देता है।

जो केवल मासाहारियों को ही पापी समझता है उसे चाहिये कि पहले अपने थोकडे खोलकर देखें कि उसमें कितने प्रकार के पाप बतलाये हैं। क्या उन पापों का करने वाला पापी नहीं गिना जायेगा ?

‘जखर गिना जायेगा।’

जैन शास्त्र के अन्दर १८ प्रकार के पाप माने गये हैं। जैसे— झूठ, चोरी, जारी, श्रोध, मान आदि करना। जो इन पापों का सेवन करे और धर्मीमा बनने की टींग मारे क्या वह वास्तव में धर्मीमा है ?

‘नहीं।’

मित्रों ! जैन सिद्धांत को यदि कोई ठडे मस्तिष्क से विचारेंगे तो पता चलेगा कि यह कैसा पूर्ण है। इसकी आदि से लेकर अंत तक की तमाम बातें ठीक उतरती हैं। हिसाब करनेवाले बहुत मित्रों पर आना पाई तक का हिसाब मिलाने वाले को क्या आप बड़ा बुद्धिमान न कहेंगे ?

‘कहेंगे।’

‘पाप से बचना चाहिये’ ‘धर्म करना चाहिये’ इस प्रकार बहुत से भाई कहते हैं, पर पापों से बचने का और धर्म को करने का बहुत

कम माई विचार करते हैं। ये माई कमाई को बुरा कहते हैं, पापी समझते हैं, पर स्वयं जाग्साजा करने में बाध नहीं आते, कपट करने से नहीं चूकते, दूसरे पर दोष मँडने में नडा भूलते, गरीबों के गले दबाने में मय नहीं लाते, अंठे मुशदमे चलाने में गर्म नहीं लाते, बिजकुल खोटी गमाहिय दिलाने में पर पाठे नहीं रखते, दूसरे के मन को स्वाहा करने में नहीं डिचरुते, पराड स्त्रियों पर लोटा नजर रखने में धृणा नहीं लाते। कहीं तक कहें, ये पाप करते हैं पर पापी कहलाने में अपना तौहीन समझते हैं। कमाई दुरी फेर कर कल करता है, पर ये कटम को चढा कर ही कई बार कइयों की एक साथ हत्या कर डालते हैं। विचारा कसाई हत्या करके हत्यारा कहलाना है पर ये कई हत्याएँ करके भा धर्मी-मा बने रहते हैं।

ये लोग यह नडा समझत कि जैसे हम फसाते हैं वैसे हफ भी फसाये जायेंगे, हम मारते हैं पर कभी हम भी मारे जायेंगे। आघात का प्रत्याघात हुए बिना न रहेगा।

मित्रों ! शास्त्र कहता है कि एक बार तमाम प्राणियों को अपनी आत्मा के तुन्य देख जाओ फिर पता लग जायगा कि दूसरों को दुख कैसा होता है।

"आत्मौपम्येन पुरप* ममाणमधिगच्छति।"

आत्मा के तुन्य तमाम प्राणियों को देखने पर सुख दुःख की साक्षी तुम्हारा हृदय अपने आप देने लग जायगा। आपसो, शास्त्रों के देखने की जरूरत न रहेगी, सच्चिदानन्द अपने आप शास्त्र का सार बतल देगा।

मित्रों ! मनुष्य को दूसरे के मल बुरे कामों की मात्रम पड जाती है पर उसमें राय में कैस कैम मल बुरे गुण हैं, यह मात्रम बहुता को नडा पडती। उनको तो तमा मात्रम पडती है, अब लोग उनके गुणों

पर कुछ टाँका टिप्पणी करने लगते हैं। जो मनुष्य अपने गुणों की टाँका देखकर उनको सुधारने की कोशिश करता है वह बुद्धिमान् गिना जाता है।

मित्रों! अपनी आमा हिंसक को देख कर—शिकारी, को देख कर अंगूर कष्ट कहता है पर अपनी आमा ने भी अनेक बार जीरों को मारा होगा, उन्हें कष्ट पहुँचाया होगा।

‘हे आत्मन्! अब तू शिकारी नहीं है, हिंसक नहीं है, यह तू समझ गयी हो तो अब अज्ञान के जाल में मत पटना।’ ऐसी भावना काजिये।

भावना से आपकी आत्मा में अजब शक्ति चमकृत होगी, और आपको योडे ही दिनों में आनन्द का अनुभव होने लगेगा। यह आनन्द योडे प्रमाण में न मिलेगा, पर इतने प्रमाण में मिलेगा कि आप उस आनन्द की भेट दूसरों को भी कर सकेंगे।

एक बात जरूर है, और वह यह कि यह भावना स्वार्थ की न हो। इस भावना में ‘मुझे धन मिले’ ‘पुत्र मिले’ ‘स्वर्ग-मिले’ ‘मैं इतना चमकवाला बनूँ’ ‘राजा बन जाऊँ’ ‘बादशाह बन जाऊँ’ आदि की कांक्षा न हो। भावना अपने लिये न हो पर-ससार की कल्याण कामना का हो। उसमें प्रार्थना की जाय कि—

दयामय-ऐसी मति हो जाय।

त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन घटती जाय ॥ १ ॥

औरों के सुख को सुख समझूँ, सुख का करूँ उपाय।

अपने सब दुखों को सह लूँ, पर दुख सहा न जाय ॥ १ ॥

भूला-भटका उलटी-मति का, जो है जन समुदाय।

जैसे दिखाऊँ सधा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय ॥ २ ॥

जब आप पैसा मारना करने लग जायेंगे तब आपकी धाना में
अपूर्य जागृति उत्पन्न होगी। आपका सचिदानन्द प्रगट हो जायगा और
मुक्तराता हुआ घोषणा करेगा कि—

‘मित्री मे सच्च भूयेसु ।’ *

अभी तो आप परदेशों में धन कमा लते हैं और यहाँ (भार
वाड में) आकर गप्पे मारा करते हैं पर उक्त घोषणा होने पर क्या
आप इस प्रकार निरुद्धे बैठे रहेंगे ? उस समय आपको एक क्षण का
विश्राम लेना भी औचित्य से परे मालूम होगा।

उस समय आप के जीवन की वह धारा जो प्रगल्भेग से नाच
स्वार्थों के गहन गहर में पतित हो रही है, निस्वार्थ की मदकिनी का
रूप धारण कर धराजाम पर शांत गभीर गति से प्रगहित होने
लग जायगी।

आप के जीवन की वह धारा जो अभी ईर्ष्या, क्लेश, दुःख, सन्ताप
आदि के विपैले पौदोंके बगाने में सहायक बनती है, उस समय प्रेम,
हर्ष, आनन्द, शास्त्रना आदि की वन्दरियों को नव-पल्लवित करने में
आधारभूत—सी होकर अखिल विश्व के सर्व प्राणियों की गुत्तरूप से
सेवा बजायगी।

पाद रखिये, आपकी शास्त्र में ‘धम्म सहाया’ अर्थात् धर्म के
अन्दर सहायता देने वाले कहे हैं। क्या गप्पे मारनेवाले कभी धर्म के
सहायक कहला सकते हैं ?

‘नही।’

धर्म के सहायक के ही कहला सकते हैं जो स्वयं धर्म नियमों का

शब्द करते हैं तब सच्चे हृदय से प्रेममयी भाषा दूसरों को उसका शत्रु कराते हैं।

गप्पें मारनेवाले स्वयं तो पाप बाँधते ही हैं पर दूसरों से भी बधनाते हैं। क्यों कि इन थोड़ी गप्पों में दूसरों की निंदा, दूसरों की चुगली और दूसरों की खोटी-चोखी ही का मुख्य विषय चला रहता है।

आपस में फट आज खूब बढ़ रही है इसका मुख्य कारण क्या ?
' ये ही गप्पें । '

मित्रों ! यदि आपके कुछ काम बहा हैं तो व्यर्थ की बातें मन मारो, फजूट गप्प न उलाओ। इन बड़बड़ाहटों से आपकी आध्यात्मिक शक्ति कम हो जाती है। अतः प्रत्येक अवकाश के समय मौन का अनुभव करो। मौन साधारण को शक्तिमान् पुरुष बना देता है।

जब किसी एंजिन की शक्ति को काम में लाना होती है तब मशीन चलानेवाला कारीगर उस मशीन की शक्ति को संचित कर लेता है। बुद्धिमान् भी उस एंजिन चलानेवाले कारीगर की भाँति अपने मस्तिष्क की शक्तियाँ एकत्रित करके उनको रोकी हुई रखता है ताकि जब और जहाँ चाहिये वहीं उनका उचित और सशक्त प्रयोग करके वह अपने आवश्यक कार्य को सफलता के साथ सम्पादन कर लेता है। बक-झरू करने वाले में यह शक्ति नहीं होती।

यदि व्यर्थ की बकझरू की टैर लोगों में न होती, फजूट की निंदा करने का अभ्यास लोगों में न होता, अकारण गप्पों के लिये लोग अपने अमूल्य समय का नाश न करते तो आपकी समाज में ये दुःख-बादियें, ये धड़े और ये पार्टियें कभी नहीं दिखलाई देती।

मित्रों ! मैं पहले कह चुका हूँ कि द्वे फैलाना हिंसामें गिना गया है, छोड़ दीजिये। आप 'औरों के सुखको

देख कर कभी न जर्दगा ' इस मंत्रा जाप कीजिये, पवित्र बन जायेंगे
 मैं आपको वेद सुनाऊँ, पुराण सुनाऊँ या कोई धर्मशास्त्र सुनाऊँ, सब
 पहा बात मिलेगी ।

कई भाई कह सकते हैं कि दूमरोंके सुग से हमें क्या फायदा ।
 आप इस भेद के पदों को उठा डालिये फिर देखिये क्या कन्द
 खाता है । आप यदि इस पददे को उठा देंगे तो ईश्वर के दर्शन
 हो जायेंगे ।

मैं जानू हरि दूर है, हरि है हिरदा माँय ।
 आधी टाटी कपट की, तासे सूझत नाँय ॥

(कबीर)

ईश्वर कहता है—हृदय शुद्ध करो; विश्वास रखो, भरो, दर्शन प
 जाओगे । इसके बिना मेरा भेट के लिये मटकते ही रहो पर कर्त न
 पाओगे ।

हृदय शुद्धि का उपाय वही है जो मैंने उपर बतलाया था
 अर्थात् दूसरोंके सुख को देख कर सुखी बनो यही हृदय शुद्धि का उपाय
 है ।

मेरा अनुमान है, ऐसा हृदय शुद्धि आप लोगों ने नहीं की । आप
 कहेंगे कैसे ? सुनिये—

किसी के मकानमें सरकारने मुफ्त में नल लगावा दिया । अब
 उस मनुष्यको कितना सुख होगा ? वह समझेगा—अहा, मेरे उपर
 सरकारका कितना मरदाना है, मेरे घरमें नल लगाकर मेरा इज्जत की
 गई है । है कोई मेरे समान दूमरा कोई इज्जत का पात्र ?

इस प्रकार मुफ्त में नल लगाने से इस भाईको कितनी खुशी हुई ?

पर जब सरकार, जिस प्रकार इसके घरमें नल लगाया यदि उसा प्रकार सबके घरमें नल लगा दे तो उम भाईको उतना आनन्द होगा ?

‘ नहीं । ’

वह समझेगा—‘ याह, इसमें क्या हुआ ? सब के घरों में लगाया जैसे मेरे घर में भी । ’

क्या सब के घर में नल लगाने से वह नल खोटा हो गया ?

‘ नहीं । ’

पर उस भाई के हृदय में द्वेष उत्पन्न हो गया, इसलिये पहले जो मूर्तों पर ताज देता था, वह भूल गया । जब उसके घरमें नल लगा था तब वह समझता था कि मैं बड़ा और सब छोटे । पर जब सब के घरोंमें नल लग गये तब कहने लगा—

‘ इसका क्या । ’

इसी प्रकार मैं वहनों की बात कहता हूँ—

एक सेठानी सोने के दागीनों में हीरों जड़ी जगडिये पहन कर दो चार गरीब दासियों के साथ लठपट करती चरती है, तब समझती है— ‘ मैं बड़ी । ’ पर जब किसी देवता क प्रताप से उन गरीब दासियों को हारे के दागीनें मिल जायें तो उस सेठानी को कितना दु ख होगा ? उस सेठानी से पूँछा जाय—‘ क्या ये तेरे बाप का रू कर छाई है, जिसमे तुझे इतना दु ख होता है ?

मित्रों ! इस प्रकार की द्वेष बुद्धि छोड दो चार उपरोक्त मंत्र का जाप करो ।

रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और पांडवों की लोग स्तुति क्यों करते हैं ? इसके विरुद्ध, रावण, कस और कौरवों को लोग निष्कार क्यों देते हैं ?

इसलिये कि वे दूमराकू दृगका अपना दुख और दूसरों के सुख को अपना सुख समझते थे। स्मरण रहे, वे धीरे धीरे और धीरे से ही दया (अहिंसा) होता है। अहिंसा क्षात्रधर्म के बिना नहीं पाये जाता। बनियाशाही के हाथों में जब से अहिंसा आई है तब से यह कार्यों का चिह्न बन गई है।

मित्रों ! आप (ओसवाळ भाई) किसी जमाने में क्षत्रिय थे। आपके अन्दर क्षत्रिय का गून दौड़ना चाहिये। जितने तीर्थंकर हुए हैं वे सब क्षत्रियवश में उत्पन्न हुए हैं। यह धर्म (अहिंसा) कार्यों का नहीं है।

आप रामचन्द्र का काम सुनिये—

जिस समय मगराणा केऊई, महाराजा दशरथ से राम को वन बाम और भरत को राव भिजने का वचन देने की कहती है, उसे सुन कर दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं, इतने में राम आते हैं। पिता को मूर्छित अवस्था में देख कर केऊई से पूँछने हैं—

“माता जी ! क्या बात है, जो आप भी उदास हैं और पिता जी भी भूमि पर पड़े हुए हैं ?”

केऊई पिचराल सिंहनी के रूप में बैठी थी, लाल लाल आँखें कर बोली—

“क्या बात है ? बात क्या है, क्या बात कि तुम महाराज के पुत्र हो, वैसे मेरा पुत्र भरत नहीं है। माता जुदी जुदी हुई तो क्या, पिता तो एक ही है।”

राम— “हाँ माता जी ! आप सही फरमाती हैं।

केऊई— “तब तुम्हें राजम गिजे और मेरे बेटे को नहीं ?”

राम— “क्यों नहीं माता जी, जरूर मिटना चाहिये।”

केरुई— “राम, तुम भीठे बहुत बोल्ते हो, पर अन्न में तुम्हारे फेंदे में नहीं आने की।”

राम— “नहीं जाना चाहिये माता जा !, यह आपका फरमाना बहुत ठीक है।”

राम—(पिता की तरफ मुखातिब होकर) पिता जी ! पूज्य पिता जा !! आप वीर क्षत्रिय हैं, आपको माता के वचन सुन कर प्रतराना न चाहिये। आप शौरु से माता के वचन को पूरा कीजिये। मुझे धन जाने में कोई दुःख नहीं है।

मित्रों ! आपमें ऐसा भ्रातृ प्रेम या मातृ प्रेम है ? आज भाई भाई छोटी छोटी बात के लिये सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। कोठों तक मुरुइमा बाजी चलती है। मैंने सुना था कि बरई के अन्दर दो भाईयों ने अपने धन का बराबर हिस्सा बँट लिया, पर बड़े भाई का बोया हुआ एक सुपारी का पेड़, छोटे भाई की जमीन के हिस्से में आ गया।

बड़े भाई ने कहा—‘मैंने इस पेड़ को बोया है, इसलिये इस पेड़ पर मेरा हक है।’

उत्तर में छोटा भाई बोला—‘तुमने बोया तो क्या हुआ, मेरे जमीन के हिस्से पर है, इसलिये एक वर्ष सुपारा तुम लो और एक वर्ष हम।’

बड़े भाई ने यह बात नहीं माना। आखिर, कोर्ट में मुरुइमा चला। लाखों रुपये खर्च हो गये। जन एक दिन इन्कारा करने के लिये उस पेड़ को देखने आये। वहाँ आकर कहा—‘काट दो इस नाशकारी पेड़ को, जिसके कारण इतनी तकलाफ उठानी पड़ी।’

आखिर, पेट काटा गया। तब जाकर कहीं उन भाइयों को शांति आई।

सुपारा का पेट काटना जितना उन्हें श्रेय लगा, उतना एक के पास या आधा आधा देने में राजी न हुए।

भियों ! कहां यह भाइयों का नाशकारी मुकदमा चार कहीं राम का भाई के लिये राज्य को ठुकरा देना।

केरुई दशरथ से कहती है—“ पहले वचन देना सहज या अब पालना मुश्किल है।

राम ' कुछ अन्याय से कहता होऊँ तो तुम बोलो। ”

राम—नहीं माताजा ! आप अन्याय कैसे बोल सकती हैं ? आप तो यह राज्य भरत के लिये मेरे भाई के लिये माँगती हैं, याय के अनुसार किसी रास्ते चलने वाले के लिये माँगती तो भा अनुचित नहीं था।

राम ने दूसरे के सुख के लिये वनवास ग्रहण किया था। बुरा क्या हुआ ? छोटने समय लका का राज्य अपने साथ और लेते आये।

भियों ! “ दूरियों का मुक्त चाहो ” इस मंत्र का सामना अत्र, और बतला कर क्या करूँ ? आप समझ ही गये होंगे।

यहाँ पर हमने मोटा मोटी बातों का थोड़े में दिग्दर्शन कराया है। हिंसा अहिंसा का विषय महत् है। संपूर्णता से कहना, हा से परे बात है। शास्त्र के अन्तर गणवर्गों ने इस विषय प्रकाश डाला है, सद्गुरु के द्वारा उनके परिश्रम का लाभ शुभदाया हागा।

बौद्धा अपने छडको को हीरा, माणिक, मोती की परीक्षा
 व समय बतलाये, उस समय उसे नकली हीरा, माणिक, मोती की
 जा मा बतला दे तो उसे बड़ा लाभ होता है। जब वह मारने रखे
 हीरा, माणिक, मोतियों में से नकली हीरा, माणिक, मोती छोट कर
 रखा दे, तब समझना चाहिये कि वह पूरा जौहरा बन गया। वह
 अपना व्यापार करे या न करे, यह बात जुदी है, पर यह तो निश्चय है
 कि व्यापार करना उसके लिये बड़ी बात नहीं है।

इसी तरह जो हिंसा अहिंसा के स्वरूप को समझ गया, समदृष्टि
 क प्रताप से उसके लिये बुरे को त्यागना जोई कठिन नहीं है।



सांसारिक कार्य और अहिंसा।



यह बात तो आप जानते ही हैं कि सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त होना साधु का काम नहीं है। यह काम गृहस्थ का माना गया है। साधु इस कार्य में इमलिय प्रवृत्त नहीं होते कि यह आरम्भ युक्त होता है। सच्चा साधु आरम्भ का कोई भी काम नहीं करता इसीलिये शास्त्र के अन्दर साधु को निरारम्भी कहा है। सांसारिक कार्यों में धनदि का होना आवश्यक माना गया है। साधु जब सांसारिक कार्यों में हाथ डालना ही नहीं चाहता तब वह पैसा आदि क्या कर अपने पास रखेगा। पैसा आदि पास न रखनेसे ही साधु को निपरिग्रही भी कहा है।

जिस प्रकार शास्त्र के अन्दर साधु को निरारम्भी निपरिग्रह कहा है, उसी प्रकार श्रावक गृहस्थ को अल्पारम्भ अल्पपरिग्रही कहा गया है। यहाँ गृहस्थ के साथ 'श्रावक' शब्द हमने जान बूझ कर रखा है। कारण, श्रावक-गृहस्थ ही ऐसा हो सकता है। श्रावक से भिन्न गृहस्थ याने 'मिथ्यात्वा' दूसरे शब्दों में इहलौकिक सुख वैभवं को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मानने वाला गृहस्थ ऐसा नहीं होता। यह महारम्भी महापरिग्रही बनने का ही अभिलाषी हुआ करता है।

इससे आप यह मन समझिये कि, श्रावक सुख से वंचित रहता है या वंचित रहने के लिये, उसे उपर्युक्त सुख से नहीं, श्रावक के लिये प्रयत्न करता है। के लिये प्रयत्न करता है। का उद्देश्य नहीं है। भारी अंतर है।

इसका अन्तर यह है कि श्रावक को स्थूल हिंसा का सर्वात्प्रागी
 रक्षा पता है। ह पर सूक्ष्मों की भी जर्होंक वन पडता है,
 का न ध्यान रखता है। हाँ, पहला काम उसका स्थूल जीवों की
 रक्षा करना है। मिथ्यान्वी में यह बात नहीं होती। मौका पडने पर
 राम नियम का हृद के पार भी काम कर बैठता है।

मित्रों! हमने ऊपर जिस श्रावक के गुण बतलाये हैं, वे विषेकी
 श्रावक के समझने चाहिये। केवल नामगारी आज कल के श्रावकों
 में यह गुण बहुत कम देखा जाता है। क्यों कि सचे उपदेश के
 अभाव से उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। कर्तव्या-
 कर्तव्य का अर्थ अच्छी तरह न समझ सकने के कारण ही बहुत से
 माई कर्तव्य के पालने में ढीले दिखाई देते हैं। यह दोष, पालनेवाले
 माईयों का कम अंश में दिखाई देता है। मेरी समझ में यह दोष
 विशेष कर उपदेशकों का है कि वे क्रमशः कर्तव्य पालने का उपदेश
 नहीं देते, या शास्त्रों का कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं।

याद रखिये, जो साधु के कर्तव्य को गृहस्थ से पालने को कहता
 है वह उसे अपने मार्ग से च्युत करता है। आज गृहस्थ (श्रावक)
 के सिर पर सूक्ष्म की रक्षा का अर्थात् घायर जीवों की रक्षा करने का
 भार इतना डाल दिया कि वे इसका विशेष ज्ञान न रखने से, स्थूल
 हिंसा से भी नहीं बच सके। गृहस्थ के लिये मुख्य कर स्थूल हिंसा
 से बचने का विशेष आग्रह किया गया है। यदि स्थूल के सिवाय सूक्ष्म
 (धावर) हिंसा से ही बचने का मुख्य कर्तव्य होता तो शास्त्र में —

“यूष्मा ओ पाणाइवाया ओ वे रमणम्।”

को बदले—

“सुहमा ओ पाणाइवाया ओ वे रमणम्।”

1-1) को बदलते।

शास्त्रकार न पानी के अन्दर— नहा नहीं पानी को एत, ६
के अन्दर असायाता जाव बनलाये हें।

अब काई पाना का प्यासा आया उसने पानी मँगा। प
पिठा दिया गया। कइ भाई यहाँ कइ बैठने हें कि एक पचेन्द्रिय जी
की रक्षा के लिये असायात जावें या नाश हो गया, इसका जवा
दार कौन ?

पर हम शास्त्र में, जहाँ तीर्थकरों ने हिंसा का वर्णन किया है
वहाँ देखते हैं कि पचेन्द्रिय जीव के सामने सूक्ष्म जीवों को उतना
महत्व नहीं दिया गया है।

पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करनेवालों को नरक गति मिले, ऐसा
पाठ पढ़ने में आया है पर सूक्ष्म जीवों की हिंसा करने से भी मिली हो,
ऐसा पाठ देखते में नहीं आया।

मित्रों ! इस प्रश्न का विशेष सुझावा नेमीनाथ जी के विवाह
से कीजिये।

२१ तीर्थकरों ने यह बात प्रसिद्ध की थी कि नेमीनाथ बाल-ब्रह्म
चारी रह कर दीक्षा लेंगे। शास्त्र प्रसिद्ध होने से तथा नेमीनाथ स्वयं
त्रिकाल-ज्ञानी होने से इस बात को जानते थे कि न बाल-ब्रह्मचारी
रह कर दीक्षा लेंगे। फिर उन्होंने यह विवाह का नया आडंबर क्यों
खड़ा किया ? इसलिये कि यादवा के अन्दर महा हिंसा घुस गई थी।
उस हिंसा को दूर करने के लिये विवाह प्रसंग को लेकर बाड़े में बंधे
हुए पशुओं को करुणा से छुड़ा, और विवाह का त्याग कर प्रयत्न
रीति से अहिंसा और महा त्याग का जगत को प्रभाव बतलाया। यदि
स्थानर जीवों की हिंसा पचेन्द्रिय जीवों के सदृश होती तो भगवान्
नेमीनाथ को विवाह के प्रसंग, स्नान की छुट्टी में बहुत सा जल इकट्ठा

मित्रों ! जब विचार करने की बात यह है कि बहुत जीव उस जल का कुटी में थे या उस राइ में ? उत्तर यह होना है कि सूहा जीवों की सग्या से तो जल का कुटी में असदय जल जनु तथा अपेक्षा से अनन्त जाय बाय ये परम्पु बाटि में तो गिनती के हा पनु पक्षा ये ।

इस कथन की जरा बुद्धिपूर्क समझना चाहिये कि यदि एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा का, पचेन्द्रिय जीवों का रक्षा के बराबर महाम्य होता तो भगवान् नेमीनाथ जी अपने स्नान करते समय हा यह बात कहते कि यह बहुत प्राणियों का हिंसा मुझे शान्ति दाना न होगा । वहाँ तो ऐसा कुछ भा न कह कर पशु पक्षियों के बाड़े के सामने ही ऐसा कपन किया कि -

“ यह बहुत प्राणियों की हिंसा मुझे शान्ति दाना न दोगी । ”

इससे स्पष्ट रीति से यह बात गारुम पडनी है कि पचेन्द्रिय का रक्षा महारक्षा है । नेमीनाथ जी ने अपने प्रलय में पशु पक्षियों को छुटा कर उदाहरण उपस्थित किया । कोई तर्क कर सकता है कि-

‘ पचेन्द्रिय रक्षा में एकेन्द्रिय जीव मारे जायें तो एकेन्द्रिय का सग्या बहुत होने से पचेन्द्रिय की रक्षा की अपेक्षा एकेन्द्रिय का पाप ज्यादा होगा । ’

यह कहना सर्वज्ञ मिया है । अगर ऐसा होता तो दया को प्रगट करने के लिये स्नान आदि का आरम्भ का आडम्बर नेमीनाथ भगवान् कभी स्थाकार नहीं

मित्रों ! आज कल आप लोगों में गैर-समझ फैल रही है । अमृतलाळ भाई बाई को ध्यास लगी । उनमें एक आनिका मँगो । पर उनमें इसलिये नहीं दिया कि

होता है। इस बहन ने यह तैले का दड किसमें से निकाला यह हमारी समझ में नहीं आया। अमेराकागले यहाँ आकर हमारे भाइयों पर दया करें, पर हम अपने भाई बहनों के प्रति तिरस्कार करें, यह कहाँ का पाप है ?

मनुष्य, पशु पर दया और छोटे छोटे जीवों को बचाने की कोशाश करे पर मनुष्य के प्राण जाते हों उस तरफ कुठ भी ध्यान न दें यह कितनी भारी गैर समझ है !

मित्रों ! साधु को तो उ ज्ञाया की हिंसा का त्याग है, आपको नहीं है, फिर भी सूदन जीवों की ओट में आप अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता दिखलते हो यह उचित नहीं है।

दुनियाँ में ऐसा कोई आरभ का काम नहीं जिसमें कर्मबध न होना हो। काम को ज्ञान पूर्वक करने से पाप अब कम होता है और अज्ञान से करने से भयकर पापबन्ध हो सकता है।

कई भाई विचारते होंगे कि रोट्टा करने वाला बहन पाप से नई बच सकती। मैं कहता हूँ वह पाप से बहुताश में बचती हुई पुण्य प्रकृति का बध भी कर सकती है। आप कहेंगे—'कैमे ?' इसका उत्तर है—'जो बहन रसोई करने को अपने पर आया हुआ कर्तव्य समझता है, यह समझती है कि इस रोट्टी से बहुतों की आत्मा को शांति मिलेगी, अपने को मजदूरनी न समझ कर जयणा पूर्वक लकडियों को, कण्डों को और चूल्हे को साफ करती हुई, जीवों को बचाती हुई रसोई करती है, वह पाप प्रकृति में भी पुण्य प्रकृति बँवता है। पर जो अपने को मजदूरना समझ कर बे परवाही से रसोई करती है और भोजन करनेवालों को राक्षस समझती है वह बहन पाप प्रकृति में, और पाप ज्ञानि बाँध लेती है।

बहुतमी बहनें रसोई न करने में अपने को पाप में बची हुई समझता है। पर मैं कहता हूँ कि यह उनका एकान्त यार्थ खयाल नहीं है।

आज की बहुतसी बहनों का जीवन आलस्यमय बन गया है। ये शास्त्र के वास्तविक अर्थ को तो रम्य कुछ समझता नहीं और न समझने की काशाश करता है। शास्त्र में कहा क्या है और ये काम में किस ढंग से लाती है। ये हम लोगों (साधुओं) के पास से घटा न फेरने की, पाना न लाने की, रसोई न करने का सौगद लेता है। ये समझता है कि ऐसा करने से हम पाप से बच जायेंगी। पर इन लोगों ने इस बात पर कभी विचार न किया कि आटा खाना पड़ेगा, पानी पाना पड़ेगा और रोटी का जामना पड़ेगा हा, फिर पाप से कैसे अलग रह सकेंगी।

आज का बहनों के लिये रसोईया चाहिये, पाना लानेवाला चाहिये, आटा साधा मोल आना चाहिये। ये तो सिर्फ गहने पहन कर अंग को मरोड़ता हुई चलने में ही अपनी शान समझती हैं। कैसी उलटी समझ ! ये बहनें यह नहीं सोचती कि रसोई करने में, पाना लाने में, आटा पीसने में जितना हम जयणा कर सकते हैं उतनी मजदूर या मजदूरनी कमा नही कर सकती।

याद रखिये, आज जल के नौकर लोगों का बपरना प्रसिद्ध है। रसोई करनेवाले नौकर कई बार आटे में जीव हो या नहीं, इसका कुछ भा ध्यान न रख अथा—धुंधी से आग जला, रसोई बना कर रख दा जाती है। पानीवाले भा कई, मालिक पानी मगधाता है कुए का, और वे आलस्य से नल से ही ले आते हैं। कुए पर जाते भा हैं तो कुछ ठाना कुछ न छाना पानी ले जाते हैं। यहा दाप कई धरी पासनेवालों में भी समझ लीजिये। क्या जितनी चिंता जीव बचाने की आप लोगों की होता है उतना इनकी हो सकता है ?

‘ कभी नहीं । ’

बहुवा गेहूँ आदि के साथ अथ सैकड़ों प्राणी भी पीस लिये जाते हैं ।

माइयों, जरा विचार कीजिये यह सब पाप किसके जुम्मे आयेगा ? आप लोगों ने पुण्य वाधने की कोशिश की, पर यह तो उलटा पाप गले बंध गया । ममल यह हुई कि ‘ मियाजी नमाज छुडाने गये उग्रे रोजे गले पडे । ’

सुना जाता है कि आज कल लोगो की प्रगति फ्लोवर मिश्र (आटा पीसने की चक्का) में आटा पीसने की ओर बहुत बढ़ रही है । याद रखिये, इन मिलों में आटा पीसावाने में गेहूँओं का सार (पोष्टिक तत्व) जल जाना है । शरीर के पोषण के लिये बहुत कम अन्न बाकी रह जाते हैं । दूसरी बात यह है कि घसा में आटा पीसना, और इस मिल में पीसवाना, इसमें जो पाप होता है उसमें भी आकाश पाताल का अंतर होता है । मोडी देर के लिये मान लीजिये कि आपने अपने घर सेर दो सेर या पाँच सेर चितना भी आटा पीसा, मिश्र उसी का जितना पाप लगना होगा, लगना । पर आप जब गिरना (मिल) में आटा पीसवाएँगे, वह चाहे एक सेर पीसवाया हो या एक मन, पर दिन भर उसके चलने से- उसके आटा पीसने से जो पाप होगा, उस सब पाप के हिस्से में आपका भी हिस्सा रहेगा । मिश्र में आटा पीसवाना, उससे होने वाले पाप में सीर (हिस्सा) टालना है ।

ऊरण (बर्बड) में मैंने अपनी आँखों से देखा है कि जिस गिरनी में अपने भाई आटा पीसवाते हैं उसी में मास बेचनेवाले जब मास बेच डालते हैं तब लौटते समय उसी टोपली में पीसवाने के लिये गेहूँ लेते आते हैं और उसी गिरनों में पीसवाते हैं । वे गेहूँ, मास का टोपली में

आने से मामूला कुछ अना उन गेहूँओं में जा जाता है। वे गेहूँ जब गिरना में पिसनाय जाने हैं तब उन गेहूँओं का अना उसमें रह जाता है। अब आप गेहूँ पिसान आप उनका गेहूँओं का अना पहल से हा लगा तो रहता ही है अब वह अना आपका गेहूँआ में आ गया, आपन वह आटा खाया, कहिये अप भ्रष्ट हुए या नहीं ?

आलस्य के कारण घर्म जा ओट में जा आटा पीसने का त्याग ले लता है और धर्मिणा उन बैठता है, उसे में तो तब धर्मिणा समझें जब वह आटा खाने का ही त्याग ल ल।

में दादर (बर) भी या तब कुछ काठियावाडा बहनें दर्शन करन आइ। उनमें एक बुद्धा बहन भी था। बात चलने पर मैंने उनसे कहा ' गिरना म तो आटा अत्र आप नहीं पिसाता हैं न ? '

बुद्धा वाली— " मय तो काई हरकत न था, पर ए म्हारी गेहूँओं कहे ठे के— ' अमा बरई नी सेठानियों धई, ह्ये हाय थी पासरो ? ' "

में— " ठारु, ए बेंनों बरई नी सेठानियों धई एन्ले पासरानो दु ख तो बीजा ने आया, ए दुख थी मुक्त धई, पण सतति प्रसन्न करवानु दु ख, जे एक महा दु ख गणाय छे— बीजा न सुपर्दे का धू के ?

मित्रो ! सतति प्रसन्न करना एक महा सकट से निकलना है, इस सकट से न निकल कर केवल घर्ण पीसने के सकट से ये दूर हो गई तब ये बरई का सेठानिये कैवे बन गई ?

यहाँ (मारवाड) की बहनें कुछ कम नहीं है। उनसे दो कदम आग रखने वाली हैं।

बहनों, धर्म का हाट लेकर आस्य से जावन मन बिताया। यदि आलस्य से ही सुख में पड़े रहने से ही मोक्ष मिलती हो तो

एकेन्द्रिय जीवों का मोक्ष क्यों नहीं हो जाता ? ये २२००० वर्ष की आयुष्म की बिना हाथ पाँव हिलाये डुलाये बैठे रहते हैं, क्यों इनकी मोक्ष होने में देर हो रही है ?

याद रहे, आर्य करने से मोक्ष नहीं मिलनी ।

भाइयों और बहनों ! आप लोग शास्त्रों को देखिये—समक्षिये, यदि स्वयं में इतनी शक्ति न हो कि उनके तंत्र को समझ सकें तो सद्गुरुओं से समक्षिये । जब आप शास्त्रतंत्र को समझ लेंगे और यह जान जायेंगे कि किम क्रिया के करने में पुण्य तथा पाप होता है, तब पता लग जायगा कि हमें क्या करना चाहिये और उनमें अनभिज्ञ रहने के कारण अभी क्या कर रहे हैं । इस ज्ञान के अभाव से लोग कैवल्य देवा-देवी का अनुकरण करते हैं और अन्य पाप में भी महा पाप मान कर विरोध करते हैं । उदाहरण रूप, कई भाई सर्वत्रता साधु मुनिराजों को आचार विचार पाठते हुए देख कर उनकी सूक्ष्म बातों का उम्मी माफिक अनुकरण करना प्रारम्भ कर देने हैं । साधु किसी को दान नहीं देने इस विषये हम भी साधु के सिवाय किसी को न दे, साधु, गृहस्थ को अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा उनका जीवन निर्याह रूप परोपकार नहीं करते जैसे हम भी न करें, या साधु जिन कामों को न करे, ऐसे परोपकार कार्य में पाप समझें ।

यह समझना शास्त्र विधि के अनजानों का है । क्यों कि सर्वत्रती मुनिराजोंका आचर कल्प और कल्प की मर्यादा अलग है और गृहस्थोंकी अलग । जैसे किजिनका भी महत्ता अकेले रहते, मौन रखते, धर्मोपदेश नहीं देते, दूसरे साधुओं कि गया च आदि कृप्य नहीं करते, यह उनका कल्प है । परंतु यदि विचित्रवल्गी साधु जिनकल्पी के देख-देखी अनुकरण करके गयाच काना, सध की सेवा करना, परोपकार करना ओड दे तो उसको निर्धी कहा है ।

जैसे— टाणाग सूत्र के ४ थे ठाणे में— “ आय अणुऋग्णे नाग-
 णेगे नो पराणुकम्पे । ” अर्थात् कोई कोई पुरुष अपना अत्मा को ही
 खान पान आदि से क्षा करता है परन्तु दूसरे की रक्षा करता, यह या
 तो जिनकल्पा या प्रत्येक-बुद्धि या निर्दया कहा है । शास्त्र के इस
 कथन में यह बात स्पष्ट है कि जिनकल्पा या प्रत्येकबुद्धि दूसरे की अन्न
 पानी आदि से रक्षा न करे यह उनका उत्कृष्ट उत्सर्ग मार्ग का कल्प है
 परन्तु यदि स्थिर कल्पी साधु उसका अनुकरण करके दूसरे साधुओं
 की अन्न पानी आदि से अनुकम्पा न करे तो वह निर्दया कहा जाता है।
 वैसे ही साधु महात्माओं का जिन जिन कामों को करने का कल्प नहीं
 है उन उन कामों को मुनिराज का कल्प बतला कर, अगर श्रावक भी
 परोपकारादिक छोड़ दे ता उसे भा निर्दया समझना चाहिये । इनलिये
 साधु के देखा देखी परोपकार के काम गृहस्थ को छोड़ देना विधि मार्ग
 का अवन है ।

साधुओं का भाव शुचि अति उत्कर्ष होने से स्नान दत्त धारण
 आदि की, ब्रह्मचर्य का रक्षा के लिये द्रव्य शुचिकी तरफ शास्त्र विधिसे
 उदासनता देख कर कोई भोला जीव यह अर्थ निकाल ले कि जैसे
 साधु महात्मा स्नान दत्त धारण आदि नहीं करते इसलिये श्रावकों को भी
 नहीं करने चाहिये, यह समझना श्रावक के कल्प से अनजानों का है ।
 क्यों कि शास्त्र में ‘आनन्द’ आदि श्रावकों का आचार कथन जहाँ
 चला है वहाँ स्नान की और दत्त धारण आदि की विधि का कथन है ।
 परन्तु सर्वथा नहीं करना ऐसा नहीं है । कोई मूर्खता से कहे कि श्रावक
 को दन्त धारण स्नान आदि नहीं कल्पता, समझना चाहिये कि वह
 शास्त्र व श्रावक-धर्म से अनजान है ।

शास्त्र में गृहस्थाश्रम चलानेवाले श्रावक के लिये स्नान या दत्त
 धारण आदि द्रव्य शुचि का निबेध नहीं किया है बल्कि अ विधि का

किया है। हाँ, अलबत स्नानादिक को श्रावक बाह्य शुचि समझता है किंतु अतरंग भावशुचि नहीं समझता। जैनेतर शास्त्रों में भी स्नान को इसी रूप में माना है।

जो लोग इस द्रव्य भाव शुचि के भेद को न समझ कर केवल गृह-स्थाश्रम में रह कर गदपन से शरीरादिक को रख कर लोगों में यह कहता है कि 'गन्दा रहना, स्नानादि न रहना, यह हमारे श्रावक का आचार है' ऐसा कहनेवाला जैन धर्म के श्रावक की मर्यादा का अनजान है और जैन समाज में धर्म की घृणा पैदा करने रूप पाप का भागी है।

साधु मुनिराजोंकी आचार विधि श्रावकों से बिजकुल भिन्न है अतः श्रावक के लिये साधुओं की किया पाठने का कहीं आदेश नहीं है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र देखने से आपको इस बात का पता लग जायगा।

श्रावकों को सोच समझ कर ही किसी बात का त्याग लेना चाहिये, देखा देखी नहीं। साधुओं को भी त्याग कराते समय श्रावक की वस्तु स्थिति पर दृष्टि अग्र्य डालनी चाहिये। यह नहीं कि कोई श्रावक बैठे बैठे ही वैराग्य में आकर सपारा लेने की इच्छा प्रगट करे और साधु वास्तविक स्थिति को न समझ कर झटत्याग करा दे। यदि इस प्रकार का श्रावक भरे से त्याग लेगा और मैं उसे इसके अयोग्य समझूँगा तो इस कृत्य के लिये साफ इन्कार कर दूँगा। मैं अध-श्रद्धावाला तो हूँ नहीं कि बच्चा भी अगर अन्न का त्याग लेता मैं उसे धर्म समझ कर दे दूँ।

जो साधु लौकिक दृष्टि को सामने न रखते हुए गृहस्थ को किसी ऊँचे प्रकार का त्याग करा देता है समझना चाहिये कि वह उस पर अनुचित बोझ डालता है।

मुनियों को अपनी विधि पालने के लिये, शास्त्र में लिखे किसी उच्च साधु को अपना आदर्श मानना चाहिये उसी प्रकार श्रावक को अपनी

विधि पालने के लिये 'आनन्द' आदि उच्च श्रावकों की दिनचर्या पर ध्यान देना चाहिये। 'आनन्द' आदि श्रावकों की नौथ शास्त्र में श्रावकों के आदर्श के लिये ही ली गई है। यदि ऐसा न होता तो इन लोगों की नौथ देने से शास्त्र को क्या लाभ ?

'आनन्द' आदि उच्च पुरुषों की दिनचर्या के अनुकूल अपनी दिनचर्या न बिताने के ही कारण आज भारत के मनुष्यों का आयु बहुत घट गया है। आज के लोगों की दिनचर्या स्तुर्तिप्रद होने की जगह आत्स्यमय हो गई है। यहा कारण है कि यूरोप के मनुष्यों की आयु औसत प्रतिशत ७० से ७५ है, और भारतीयों की २० से २५ तक की ही ॥

विचार कीजिये इतना महदतर क्यों ? यूरोप वृद्ध होकर क्यों मरता है और भारत तरुण होने के पूर्व ही क्यों मर जाता है ? जिस आयु में यूरोप निर्यासी सेनाओं मर्ती होने की उत्कठा प्रदर्शित करता है वहाँ भारतीय मृत्यु की घड़ियों क्यों गिनने लगता है ? सिर्फ एक कारण, उनका रहन सहन विधि व्यवहार सब नियमित और यहाँ वालों का सब अनियमित ! मर्दा अनियमित जीवन भी कोई जीवन है ?

मित्रों ! मैंने ऊपर आपको देखादेखी अनुकरण करने का कुछ दिग्दर्शन कराया, अब जरा कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान न होने से अल्प पाप को महापाप समझ कर विरोध करते हैं, इस पर भी कुछ कह देना चाहता हूँ। दूर कहँ जाऊँ, आप खादी को ही लाजिये। लोग कहते हैं—'हम खादी इसलिये नहीं पहनते कि चर्खा गरन गरन फिरता है इससे वायु काय की हिंसा होती है।' ठीक है, पर बिलायती (मैन्चेस्टर आदि का) कपडा तो छहो, काया की हिंसा के द्वारा तैयार होता है, यह आपको माछम है ?

मित्रों ! वातराग का मार्ग, जैसा आप समझते हैं, उससे निराला है । आज आप आटे की मॉड ढगा कर कपडा तैयार करके देनेवाले रोगों और बलाइयों को अन्न कहते हैं, उनसे दूर रहते हैं । पर मिल के कपडों में अक्सर चर्खा लगाई जाती है — चर्खावाले कपडे आपके गले में डालते हैं उन्हें आप 'बडे सेठ'— क्योंकि वे मिल के मालिक हैं न,— कहते हैं और उनसे हाथ मिलाने में अपना अहो-भाग्य समझते हैं । चर्खे से सूत पैदा कर कपडे बनवाने में लोग पाप समझते हैं और 'मैचेस्टर' के कपडे को पहन कर 'पतित्र हो गये' मानते हैं । ऐसी बुद्धि को क्या कहना चाहिये, जो महा हिंसा करने वाले को उत्तम और अल्प हिंसा करने वाले को नीच माने ?

चर्खों के लिये आज के वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि यह सिर्फ पैसा पैदा करने का ही नहीं, पर एकाग्रता प्राप्त करने का भी साधन है । यह चर्खा विधवाओं के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखों की भुख मिटाने वाला कहा जाता है । देश की दरिद्रता मिटाने के लिये आज की बड़ी बड़ी धनशाली बहनें भी इसे कातती है । चर्खा आज कल का अविष्कार नहीं, बहुत पहले का है, इसका जिक्र जैन शास्त्रों की कथा में भी आया है । इस पर योग्य विचार कर्तव्याकर्तव्य का जानकार ही कर सकता है ।

आज कर्तव्य के विषय में बड़ी उलटी समझ हो रही है तभी तो लोग खेती को महा पाप और दूसरे अनार्य वाणिज्य को श्रेष्ठ समझते हैं । यह भी सुनने आया है कि लोग बाजर से धी खाने में पुण्य और घर पर गाय को पाल कर धी पैदा करने में पाप मानते हैं ।

पर पाद रक्षिये, खेती को जैन शास्त्र में वैश्य कर्म बतलाया गया है ।

उत्तराख्ययन जी के ३ रे अध्याय में ऐसा कथन है कि चार अंग का आराधने वाला पुण्यशाली पुरुष स्वर्ग-सुख उपभोग कर उस घर में जन्म लेता है जहाँ दस बोल का योगमाई होती है । पत्नी

बौद्ध 'खेत्त वरु' अर्थात् सेतु व केतु ये दो प्रकार के ध्यान्यादि निष्पत्ति के योग्य क्षेत्र हों। अर्थात् जो जल के सॉंचने से पैदा हो उसे सेतु कहते हैं और जो वृष्टि के जल से ध्यान्यादि निष्पन्न हो केतु क्षेत्र कहते हैं। वह पुण्यवान् पुरुष ऐसे ही गहम्य के घर जन्म लेता है। इस कथन से स्पष्ट है कि खेती महापाप का धंदा नहीं पर पुण्यवालों की ऋद्धि मानी गई है। तथा उचाराध्ययन मूल, २५ वें अध्यायन में जहाँ वैश्य कर्म का वर्णन है—'वइस्सो कम्मण्णा होइ' इस पाठ की टीका में 'कृषिपशुपाल्यादिनामयति' लिखा है। अर्थात् खेती करने व पशुओं की पालना करने से वैश्य कहलाता है। इसमें भी वैश्य का कर्म कृषि करना प्रधान लिखा है। भगवान् ऋषभदेव जी ने कर्म के तीन भेद बतलाये हैं 'असि मसि और कृषि।' अर्थात् खेती करना भी प्रधान आजायिका कर्म में है।

इन कथनों से मात्स्य होता है कि जैन शास्त्र वाले खेती को अनार्य कर्म या अस्वाभाविक कर्म नहीं कहते।

अब रही बाजार के घा की बात। जरा इस पर विचार कीजिये। क्या बाजार का घा आकाश से टपक पड़ा ?

'नहीं।'

किसी ने और किसी ने तो गौओं की रक्षा की ही होगी तभी घा मिला।

दूसरी बात, आजकल घा में बड़ा गोठाला घुनाई पड़ता है। कहा जाता है कि 'बेजाटेब्रल' आदि कई विलायता घा आने लग गये हैं। वैज्ञानिकों ने प्रसिद्ध किया है कि बहुतों में चर्बी का मिश्रण होता है।

विदेशी घा एक रुपैया का जितना मिछता है उतने देशी घा के दो रुपये लगते हैं। जिस देशगले इस भारत से हजारों मन मसखन

ले जायें, वे भारतीयों को सस्ता धाँ दे इस में कुछ न कुछ रहस्य समझना चाहिये । क्योंकि वे दिवालियों बनने के लिये तो व्यापार करते ही नहीं न ?

मित्रों ! आप अहिंसावादी होने का गौरव करते ह तो अहिंसा का सचा अर्थ समझिये । अहिंसक कहलाने वाले कई भाई अहिंसा का वास्तविक अर्थ न जानने से कई बार ऐसे काम कर बैठते हैं कि अन्य धर्मावलम्बी बजु उनके कार्यों को देख कर हँसी उड़ाते हैं, और तो और जैन धर्म को लजाते हैं ।

कहाँ जैन धर्म की अहिंसा की मिशाल्या और कहाँ इन भाइयों की अहिंसा के पीछे हिंसा का बडा भाग !

हिंसा अहिंसा का रूप न समझ मरने के कारण ही कई शरक चींटी मर जाने पर जितना अफसोस जाहिर करते हैं, उतना भी इन मनुष्य पर अत्याचार करने में नहीं लाते !

यह बात हृदय में अकिन कर जीनिये कि अत्याचार कितना पाप है कायरता के भय से (बश न चझे ह) गुणा मौनाबलम्बन कर अत्याचार सहन कर लेना भी लम्ब ह न है । हाँ, वास्तविक शांतिधारण कर लेना यह ताम्रू कई है।

पत्रों में पढते हैं कि— 'गुडे लोग हिन्दू महिलाओं को कष्ट कर ले जाते हैं । स्त्रियों को अकेले में देख कर डरो बडे गेड कृत्य, जिस प्रकार उन लोगों का नीच और अत्याचार कर जायगा, यदि उसी प्रकार पति, पुत्र, भाई न हिन बहूनी को घोरी कर ले जाय और वे कायर बन कर अत्याचार सहन करे तब गुडे से भी महानीच, महाकायर बने कहे जायेंगे ।'

वह मनुष्य पुत्री का पिता, बहिन का भाई, पत्नी का पति और और माता का पुत्र होने लायक नहीं है जो मौका पडने पर उनकी रक्षा न कर सके।

दुःख के साथ कहना पडता है कि आज के अधिकांश जैन-बन्धु इस मामले में अपने अन्य सहयोगी (हिन्दू) बन्धुओं से बहुत पीछे नजर आते हैं। जैनों की अहिंसा पर लोग टीका टिप्पणी करते हैं और इनकी अहिंसा को कायर ' बनानेवाली ' कहते हैं शायद इसका कारण भी यही हो।

' सुधा ' नामक पत्रिका में अहिंसा पर एक आलोचनात्मक लेख पढा था। उसमें लेखक ने गीता के-

“ अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ”

इस श्लोक में जो ' अनार्य ' शब्द आया है उसका अर्थ- ' जैन ' या ' बौद्ध ' किया है। शायद उसने आज के जैनों की अकर्मण्यता देख कर ऐसा अनुमान लगा दिया हो। पर यदि लेखक जैन शास्त्र की अहिंसा पर लिखने के पहले शास्त्रों का अवलोकन कर विचार पूर्वक लिखा होता तो मेरा अनुमान है कि ऐसा लिखने का कभी साहस न करता।

जैनों की अहिंसा अनार्यों की नहीं पर वीर आर्या की है। सच्चा जैन काम पडने पर रण सभामें जाने से नहीं हिचकता। हाँ, वह इस बात का जरूर खयाल रखता है कि मैं अन्याय का भागी न बन जाऊँ, मेरे से व्यर्थ की हिंसा न होजाय।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरो की है यह बात अहिंसा के वास्तविक गुण को न समझने वाले हा कह सकते हैं। अहिंसा तब वीर शिरोमणि ही धारण कर सकता है। कायर अहिंसा धारी नहीं कहता

सकने । ने अपनी कायरता ठिपाने के टिपे भले ही अहिंसा का ढोंग रचले पर उन्हे अहिंसक कहना योग्य नहीं कहा जा सकता । वैसे तो सच्चा अहिंसावादी व्यर्थ में एक चींटी के प्राण हरण करने में धर्रा जायगा क्यों कि यह सकल्पजा हिंसा है । इस दृश्य को वह अपना व्रत भंग का कारण समझता है । पर जब न्याय से रण संप्राय में जाओ का मौका आ पड़े तो वह संप्राय करता हुआ भी अपने व्रत को अखण्डित समझता है ।

मित्रों ! जो सकल्पजा हिंसा करता है उसे पापी के नाम से पुकारते हैं पर जो आरम्भ जनित करता है उसे इस नाम से नहीं पुकार सकते ।

माइयों ! अब आप लोग समझ गये होंगे कि जैन की अहिंसा इतनी सङ्कुचित नहीं है कि ससार कार्य में बाधक हो, पर इतनी विस्तृत है कि बड़े बड़े राजा महाराजा भी वारण कर सकते हैं । उनके व्यवहार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आ सकती । जैन अहिंसा यदि सङ्कुचित होती ओर ससार कार्य में बाधक होती तो पूर्व के राजा महाराजा इस धर्म को कैसे धारण करते ?

मैं पहले कह चुका हूँ कि श्रावक सकल्पजा हिंसा का त्यागी होता है और आरम्भजा का आगार रखता है । वह आरम्भ से बचने की कोशीश सकल्पजा से पहले करने में महा मूर्खता मानता है । उसे कम से करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है । वह मानता है कि इसमें ज्यादा कठिनाइयों का सामना भी नहीं करना पड़ता ।

प्यारे मित्रों ! आप छोगों को अहिंसा का अच्छी तरह ज्ञान हो जाय इसलिये अब एक मोटी बात और कह देता हूँ ।

अहिंसा के आप तीन भेद कीजिये । सात्त्विकी राजसी और तामसी । सात्त्विकी अहिंसा वीतराग पुरुष, पूर्णत्यागी मुनिगण, आरम्भ

वह मनुष्य पुरी का पिता, बहिन का भाई, पत्नी का पति और और माता का पुत्र होने लायक नहीं है जो मौका पडने पर उनकी रक्षा न कर सके।

दुःख के साथ कहना पडता है कि आज के अधिकांश जैन-ब्रधु इस मामले में अपने अन्य सहयोगी (हिन्दू) ब्रधुओं से बहुत पाठे नजर आते हैं। जेनों की अहिंसा पर लोग टीका टिप्पणी करते हैं और इनकी अहिंसा को कायर 'बतानेवाली' कहते हैं शायद इसका कारण भी यही हो।

'सुरा' नामक पत्रिका में अहिंसा पर एक आलोचनात्मक लेख पडा था। उसमें लेखक ने गीता के-

“अनार्यजुष्टमस्यर्गमकीर्तिकरमर्जुन”

इस श्लोक में जो 'अनार्य' शब्द आया है उसका अर्थ- 'जैन' या 'बाद' किया है। शायद उसने आज के जेनों की अकर्मण्यता देख कर ऐसा अनुमान लगा दिया हो। पर यदि लेखक जैन शास्त्र की अहिंसा पर लिखने के पहले शास्त्रों का अवलोकन कर विचार पूर्वक लिखा होता तो मेरा अनुमान है कि ऐसा लिखने का कभी साहस न करता।

जेनों की अहिंसा अनार्यों की नहीं पर धीर आर्यों की है। सच्चा जैन काम पडने पर रण सप्राम में जाने से नहीं हिचकता। हाँ, वह इस बात का जरूर एयात्र रखता है कि मैं अन्याय का भागी न बन जाऊँ, मेरे से व्यर्थ का हिंसा न होजाय।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरो की है यह बात अहिंसा के वास्तविक गुण को समझने वाले ही कह सकते हैं। अहिंसा बल धीर शिरोमणि हा धारण कर सकता है। कायर अहिंसा धारि नहीं कहला

सकते। वे अपनी कायरता छिपाने के लिये भले ही अहिंसा का ढोंग रचले पर उन्हे अहिंसक कहना योग्य नहीं कहा जा सकता। वैसे तो सच्चा अहिंसानदी व्यर्थ में एक चींटी के प्राण हरण करने में धर्रा जायगा क्यों कि वह सकल्पजा हिंसा है। इस कृप को वह अपना व्रत भग का कारण समझता है। पर जब न्याय से रण सप्राय में जाने का मौका आ पडे तो वह सप्राय करता हुआ भी अपने व्रत को अखण्डित समझता है।

मित्रों ! जो सकल्पजा हिंसा करता है उसे पापी के नाम से पुकारते हैं पर जो आरम्भ नित करता है उसे इस नाम से नहीं पुकार सकते।

भाइयों ! अब आप लोग समझ गये होंगे कि जैन की अहिंसा इतनी सङ्कुचित नहीं है कि ससार कार्य में बाधक हो, पर इतनी विस्तृत है कि बडे बडे राजा महाराजा भी धारण कर सकते हैं। उनके व्यवहार में किसी प्रकार की रूकावट नहीं जा सकती। जैन अहिंसा यदि सङ्कुचित होती और ससार कार्य में बाधक होती तो पूर्व के राजा महाराजा इस धर्म को कैसे धारण करते ?

मैं पहले कह चुका हूँ कि श्रावक सकल्पजा हिंसा का अन्त होता है और आरम्भजा का आगार रखता है। वह आरम्भ से अन्त की कोशीश सकल्पजा से पहले करने में महा मूर्खता मान्य है। उसे क्रम से करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। वह मान्य है कि इसमें ज्यादा फटिनाइयों का सामना भी नहीं करना पडता।

प्यारे मित्रों ! आप लोगों को अहिंसा का अच्छी तरह समझ जाय इसलिये अब एक मोटी बात और कह देता हूँ।

अहिंसा के आप तीन भेद कीजिये। सात्विकी अहिंसा और तामसी। सात्विकी अहिंसा प्रातःपुण्य, पूर्णयागी सुविद्या, आरम्भ

ध्यायी विवेकी श्रावक आदि निगरम्भ रीति में धर्मान् विम वृत्ति को पाप्मते हुए दूसरे किन्हीं जीव का दुःख न हो, उदा पात्र सकते हैं। राजसी अहिंसा उमें कहते हैं जिसमें अपाय के प्रतिहार के लिये आरम्भजा हिंसा करना पड़े। जैसे राम और रावण का दृष्टान्त छीनिये। रावण, राम की सीता को हरण कर ले गया था। राम ने सीता को माँगा, पर उसने न दिया, तब एाचार होकर राम ने उसके विरुद्ध शस्त्र उठाया और उमना नाश किया। यह हिंसा जम्र है पर यह राजसी अहिंसा का हा पक्ष कहलाता है। रावण ने शस्त्र उठाया यह सकल्पजा हिंसा था और राम की आरम्भजा, वस इम में यही फर्क है। चेटक महाराजा और कोणिक का समाम बतलाता है कि श्रावक अपने अहिंसा व्रत को पाप्मन करता हुआ न्याय पक्ष की रक्षा के लिये जो हिंसा करता है वह आरम्भजा हिंसा है परन्तु सकल्पजा हिंसा की अपेक्षा अहिंसा ही है। यह अहिंसा सात्विकी से नीचे है पर तामसीः से—जिसमें अपनी माता, स्त्री, बहन आदि पर अन्याचार कोई करना हो, उसे देख कर मन में बहुत क्रोध रखता है, पर कहीं मर जाऊँगा या मुझे कोई मार डालेगा अत चुप्पी साधना ही अच्छा है, लोगों के कहने पर कहे कि मैं अहिंसा व्रत का पाठक हूँ, मुझे उस पर दया आ गई थी, इसलिये छोड़ दिया—इससे बहुत ऊँची है। तामसी अहिंसा आत्मा के सद्गुण को नाश करने वाली और पतन की तरफ ले जाने वाली है। जो ऐसी अहिंसा से अहिंसक कहलाना चाहता है वह वास्तव में कायर है, नपुंसक है, ससार में बोझ रूप है। इतना ही नहीं, वह सस्कृति का और धर्म का महा घातक है।



